UGC CARE LISTED
(Arts & Humanities)

ISSN : 2277-4351
RNI Reg:UTTMUL 2012/53882

DP-19

वैदिक वाग् ज्योतिः
Vaidika Vāg Jyotiḥ

An International Refereed/Peer-Reviewed Research Journal on Vedic Studies

(UGC Approved Half Yearly Journal)

Vol./वर्ष-10 January-June 2022 No./ अंक 18

सम्पादक

प्रो. दिनेशचन्द्र शास्त्री

अध्यक्ष, वेदविभाग

गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार

(NAAC द्वारा 'ए' ग्रेड प्रदत्त एवं यू.जी.सी. द्वारा पूर्णतः अनुदानित समविश्वविद्यालय)

Gurukula Kangri (Deemed to be University)

Haridwar-249 404 (Uttarakhand) India

http://www.gkv.ac.in

ISSN : 2277-4351
RNI Reg:UTTMUL 2012/53882
(UGC CARE listed half yearly journal)
January-June 2022

'वैदिक वाग् ज्योतिः' 'Vaidika Vāg Jyotiḥ'

An International Refereed/Peer-Reviewed Research Journal on Vedic Studies

Patrons

Dr. Satyapal Singh, Chancellor, GK(DU), Haridwar
Prof. Roop Kishor Shastri, Vice-Chancellor, GK(DU), Haridwar

Chief Editor

Prof. Dinesh Chandra Shastri
Head, Dept. of Veda, GK(DU),
Haridwar-249 404 (U.K.) India
Email - dineshcshastri@gmail.com
Tel : +91-9410192541

Advisory Board

Prof. Nicholas Kazanas 'Padm Shri', Athens
Prof. Balram Singh, USA
Dr. Rajendra Ayurvedalankar, Haridwar
Prof. Maan Singh, Roorkee
Prof. Shashi Tiwari, 'President Awardee', Delhi
Prof. Shashi Prabha Kumar, Delhi
Prof. Lekhram Sharma, Amritsar
Prof. Ishwar Bharadwaj, Haridwar
Prof. Bheem Singh, Kurukshetra
Prof. Upendra Kumar Tripathi, Varanasi
Prof. Rajendra Vidyalankar, Kurukshetra
Prof. Vedpal (Meerut)
Prof. Kamalesh Chaukashi, Ahamedabad
Prof. Renubala, Amritsar
Prof. M.R. Verma, Haridwar
Prof. Pankaj Madan, Haridwar
Prof. L.P. Purohit, Haridwar
Dr. Aparna Dhir, USA
Dr. Anju Kumari
Dr. R.G. Murli Krishna, Delhi
Dr. Udham Singh

Distinguished Advisors

Acharya Balkrishna, V.C., Patanjali University
Prof. Devi Prasad Tripathi, V.C., U.S. University
Prof. Suneel Joshi, V.C., U.A. University

Departmental Advisory Board

Prof. Manudev Bandhu

Reviewers

Acharya Balveer, Rohtak
Dr. S.P. Singh, Delhi

Finance Advisor

Prof. V.K. Sing, F.O.
Sh. Naveen Kumar

Business Manager

Department of Veda & Librarian
GKV, Haridwar - 249 404
(Uttarakhand) India

Subscription

Rs. 1200.00 Annual, US $ 120,
Single Copy: Rs. 600.00
Rs. 5000.00 Five Year's
Payment Mode :
D.D. in favour of Registrar,
G.K.V. Haridwar (U.K.)

Published by

Prof. Sunil Kumar
Registrar, GKV, Haridwar - 249 404
(Uttarakhand) India

Printed at

D.V. Printers
97-U.B., Jawhar Nager, Delhi-110007
Mob.: 09990279798, 09818279798

UGC CARE listed (Arts & Humanities)
ISSN : 2277-4351
RNI : UTTMUL 2012/53882

वैदिक वाग् ज्योतिः

Vaidika Vāg Jyotiḥ

An International Refereed/Peer-Reviewed Research Journal on Vedic Studies

(UGC Approved Half Yearly Journal)

Vol./वर्ष-10 January–June 2022 No./अंक 18

सम्पादक
प्रो. दिनेशचन्द्र शास्त्री
अध्यक्ष, वेद विभाग

गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय) हरिद्वार
(NAAC द्वारा 'ए' ग्रेड प्रदत्त एवं यू.जी.सी. द्वारा पूर्णतः अनुदानित समविश्वविद्यालय)
Gurukula Kangri Deemed to be University
Haridwar-249 404 (Uttarakhand) India
http://www.gkv.ac.in

वैदिक वाक्

भग॒ प्रणे॑त॒र्भग॒ सत्य॑राधो॒ भगे॒मां धिय॒मुद॑वा॒ दद॑न्नः।
भग॒ प्र नो॑ जनय॒ गोभि॒रश्वै॒र्भग॒ प्र नृभि॑र्नृ॒वन्तः॑ स्याम॥–यजु. 34/36

पदार्थः–(भग) ऐश्वर्ययुक्त! (प्रणेतः) पुरुषार्थं प्रति प्रेरक (भग) ऐश्वर्यप्रद! (सत्यराधः) सत्सु साधूनि राधांसि धनानि यस्य तत्सम्बुद्धौ (भग) भजनीय! (इमाम्) वर्त्तमानाम् (धियम्) प्रज्ञाम् (उत्) (अव) रक्ष। अत्र द्व्यचोऽतस्तिङः [अ० 6.3.135] इति दीर्घः। (ददत्) ददानः (नः) अस्माकम् (भग) विद्यैश्वर्यप्रद! (प्र) (नः) अस्मान् (जनय) प्रकटय (गोभिः) धेन्वादिभिः (अश्वैः) अश्वादिभिः (भग) भजमान! (प्र) (नृभिः) नायकैः (नृवन्तः) (स्याम) भवेम।

अन्वयः–हे भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भग! त्वं नोऽस्माकमिमां धियं ददत् सदुदव। हे भग! त्वं गोभिरश्वैर्नृभिस्सह नोऽस्मान् प्रजनय। हे भग! येन वयं नृवन्तः प्रस्याम तथा विधेहि।

भावार्थ–मनुष्यैर्यदा यदेश्वरस्य प्रार्थना विदुषां सङ्गः क्रियेत, तदा प्रज्ञैव याचनीयोतापि सन्तः पुरुषाः।

पदार्थ–हे (भग) ऐश्वर्ययुक्त! (प्रणेतः) पुरुषार्थ के प्रति प्रेरक ईश्वर वा हे (भग) ऐश्वर्य के दाता! (सत्यराधः) विद्यमान पदार्थों में उत्तम धनों वाले (भग) सेवने योग्य विद्वान् आप (नः) हमारी (इमाम्) इस वर्त्तमान (धियम्) बुद्धि को (ददत्) देते हुए (उत्, अव) उत्कृष्टता से रक्षा कीजिये। हे (भग) विद्यारूप ऐश्वर्य के दाता ईश्वर वा विद्वान्! आप (गोभिः) गौ आदि पशुओं (अश्वैः) घोड़े आदि सवारियों और (नृभिः) नायक कुलनिर्वाहक मनुष्यों के साथ (नः) हमको (प्र, जनय) प्रकट कीजिये। हे (भग) सेवा करते हुए विद्वन्! जिससे हम लोग (नृवन्तः) प्रशस्त मनुष्यों वाले (प्रस्याम) अच्छे प्रकार हों, वैसे कीजिये।

भावार्थ– मनुष्यों को चाहिये कि जब-जब ईश्वर की प्रार्थना तथा विद्वानों का सङ्ग करें, तब-तब बुद्धि की ही प्रार्थना वा श्रेष्ठ पुरुषों की चाहना किया करें॥

द.भा.

वाग्ज्योतिर्नितरां विभाति भुवने ज्ञानप्रदं वैदिकम्

नाना-तर्कैर्वितर्कैर्विबुध-जनमतैर्भूषयल्लेखमालाः
शास्त्राणां दर्शनानां निगमपथजुषां ब्राह्मणानां बहूनाम्।
वाक्यैः सिद्धान्तनिष्ठैः समम् उपनिषदां तत्त्वमाधातुकामम्
वाग्ज्योतिर्वैदिकं तत् प्रसरतु भुवने ज्ञानविज्ञानदं नः॥1॥ (स्रग्धरा)

विद्वद्व्यूहविचारसारसहितं यत् प्राच्यविद्याऽऽश्रितम्
अज्ञानाऽन्धतमोनिवारणपरं सद्-बुद्धिशुद्धि-प्रदम्।
शोधोद्योगपरायणा बुधजना जानन्तु तद् दीपकम्
वाग्ज्योतिर्नितरां विभाति भुवने ज्ञानप्रदं वैदिकम्॥2॥ (शार्दूलविक्रीडितम्)

–प्रशस्यमित्रशास्त्रिणः

अनुक्रम

संस्कृत-संभागः

English Section

✦✦✦

Editorial

अथर्ववेद के 20 वें काण्ड से सम्बन्धी विप्रतिपत्ति और उसका निराकरण

अथर्ववेद का 20 वां काण्ड अन्य काण्डों की अपेक्षा अधिक गहन है। मन्त्रों में स्थान-स्थान पर अति अप्रसिद्ध शब्द मिलते हैं। इस काण्ड पर न तो सायणाचार्य का भाष्य है, और न किसी अन्य प्राचीन आचार्य का। अथर्ववेद के अंग्रेजी अनुवादों में भी 20वें काण्ड का अनुवाद नहीं मिलता। इस कारण से कई विद्वान् यह मानने लगे हैं कि अथर्ववेद का समग्र 20 वां काण्ड मूल अथर्ववेद का अवयव नहीं। यह 20 वां काण्ड अथर्ववेद में पीछे किसी काल में मिलाया गया है। मुझे यह बात कई दृष्टियों से सत्य प्रतीत नहीं होती, क्योंकि इसमें जहां अथर्ववेद की अन्तःसाक्षी प्रमाण है वहीं गोपथब्राह्मण और वैतान सूत्र भी इस बात का प्रत्याख्यान करते हैं।

अथर्ववेद की अन्तःसाक्षी - अथर्ववेद की अन्तःसाक्षी के रूप में मैं इस वेद के 19वें काण्ड के 23वें सूक्त को प्रस्तुत करना उचित समझता हूं। इस सूक्त के **चतुर्ऋचेभ्यः स्वाहा** (मन्त्र 1) से आरम्भ कर, उत्तरोत्तरक्रम से **अष्टादशर्चेभ्यः स्वाहा** (मन्त्र 15) तक के मन्त्रों द्वारा ऐसे सूक्तों के प्रति **स्वाहा** कहा है, जिन सूक्तों में कि चार ऋचाओं से लेकर उत्तरोत्तर एक- एक ऋचा के वृद्धि-क्रम से 18 ऋचाएं हैं। मन्त्र 16 वां है- **एकोनविंशतिः स्वाहा**, तथा मन्त्र 17 वां है- **विंशतिः स्वाहा**, तथा मन्त्र 18 वां है- **महत्काण्डाय स्वाहा।** परन्तु समग्र अथर्ववेद में ऐसा कोई सूक्त नहीं जिसमें कि 19 मन्त्र हों। और न ही मन्त्र 01 से 15 तक के मन्त्रों में चतुर्थी विभक्ति के सदृश 16 वें और 17 वें मन्त्र में चतुर्थी विभक्ति है। इस वैषम्य से यह ध्वनित होता है कि **एकविंशतिः** तथा **विंशतिः** पद किन्हीं सूक्तों का निर्देश नहीं करते, अपितु ये पद 19 वें काण्ड तथा 20 वें काण्ड का निर्देश करते हैं। जैसे समग्र अथर्ववेद में 19 मन्त्रों वाला कोई सूक्त नहीं, वैसे अथर्ववेद के 01 से 19 काण्डों तक में 20 मन्त्रों का भी कोई सूक्त नहीं। अथर्ववेद के 20 वें काण्ड में केवल 04 सूक्त ऐसे हैं, जिनमें कि बीस-बीस मन्त्र हैं। यथा सूक्त 129; 130 और 131 में बीस-बीस मन्त्र हैं। परन्तु ये तीनों सूक्त खिल होने से प्रक्षिप्त हैं, क्योंकि ये कुन्ताप सूक्तों के हैं। काण्ड 20 सूक्त 70 में भी 20 मन्त्र हैं। सम्भवत**:** **विंशतिः स्वाहा** (मन्त्र 17) बीसवें काण्ड के 70 वें सूक्त का निर्देश करता हो। यदि यह अनुमान

सत्य हो, तो यह मानना होगा कि 19 वें काण्ड के सत्ताकाल में 20 वां काण्ड भी अथर्ववेद का अविभाज्य अवयव था। परन्तु **एकोनविंशतिः स्वाहा** (16) मन्त्र की समस्या पूर्ववत् स्थित है, क्योंकि समग्र अथर्ववेद में 19 मन्त्रों का कोई सूक्त नहीं। तथा पूर्व मन्त्रों के सदृश चतुर्थी-विभक्ति के अभाव में **एकोनविंशतिः** शब्द द्वारा किसी सूक्त का ग्रहण भी सम्भव नहीं। इसलिए प्रतीत होता है कि **एकोनविंशतिः** शब्द 19 वें काण्ड का ही निर्देश करता है, और इसी चतुर्थी विभक्ति के अभाव के कारण **विंशतिः स्वाहा** (17) मन्त्र भी 20वें काण्ड का ही निर्देश करता है। **महत्काण्डाय स्वाहा** (18) मन्त्र **विंशतिःस्वाहा** (17) मन्त्र के अभिप्राय को ही परिपुष्ट करता प्रतीत होता है। 20 वां काण्ड वस्तुतः अथर्ववेद के शेष काण्डों से बडा है। इसीलिए 20वें काण्ड को महत्काण्ड कहा है। अथर्ववेद में सूक्त संख्या तथा मन्त्र संख्या की दृष्टि से दो काण्ड महाकाण्ड हैं। 6ठे काण्ड में 142 सूक्त हैं, और 454 मन्त्र। परन्तु 20 वें काण्ड में सूक्त 143 हैं, और मन्त्र 958 - इस सूक्त संख्या और मन्त्र संख्या में कुन्ताप सूक्त और उसके मन्त्र भी सम्मिलित हैं। कुन्ताप सूक्तों के कुल मन्त्र 147 हैं। यदि इन 147 मन्त्रों को न भी गिना जाय, तब भी 20 वें काण्ड की मन्त्रसंख्या 811 होती है। इस प्रकार मन्त्रसंख्या की दृष्टि से 20 वां काण्ड महाकाण्ड है।

बाह्यसाक्षी नं. 01- प्रो. राथ के कथनानुसार अथर्ववेद की पैप्पलाद शाखा के 13 वें काण्ड में,- अथर्ववेद के 20वें काण्ड के 34 वें सूक्त में पठित **स जनास इन्द्रः** पदों का निर्देश, कुछ पाठभेद के साथ किया है। इससे भी प्रतीत होता है कि पैप्पलाद शाखा के काल में अथर्ववेद के 20 वें काण्ड को अथर्ववेद का अंग माना जाता था।

बाह्यसाक्षी नं. 02- अथर्ववेद के गोपथ ब्राह्मण 1 - 5 के अनुसार ब्रह्मा से 20 ऋषि उत्पन्न हुए, उन्होंने अथर्ववेद के 20 काण्ड साक्षात् किये। गोपथब्राह्मण के इस कथनानुसार ज्ञात होता है कि अथर्ववेद का 20 वां काण्ड अथर्ववेद का अविभाज्य अंग है।

इसी प्रकार वैतानसूत्रों में भी, अथर्ववेद के 20 वें काण्ड के मन्त्रों का विनियोग कर्मकाण्ड में किया गया है।

भ्रान्ति का कारण -

मूलतः अथर्ववेद 19 काण्डों का ही है, 20 वां काण्ड इस में पीछे किसी काल में मिलाया गया है, इस सम्बन्ध में कई वैदिक विद्वान् निम्नलिखित प्रमाण उपस्थित करते हैं। जैसे-

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्; अथर्व.19/71/1

यस्मात्कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम्।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह॥

–अथर्व.19/72/1

अर्थात् मैंने वर देनेवाली वेदमाता का स्तवन कर लिया है। तुम इसका प्रवचन या प्रचार करो। यह द्विजों को पवित्र करती है, आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, द्रविण और ब्रह्मतेज मुझे देकर ब्रह्मलोक जाओ।

जिस कोश से हमने वेद को उठाया था, उसी के अन्दर हम इसे रख देते हैं। ब्रह्म अर्थात् वेद के सामर्थ्य द्वारा हमने इष्ट सम्पादन कर लिया है। हे देवो! उस तप के द्वारा इस जीवन में, मेरी रक्षा करो।

इन उपर्युक्त दो मन्त्रों में तीन आपत्तियां हैं -

1. एक यह कि - **मैंने वेद माता का स्तवन कर लिया है।** इससे यह परिणाम निकलता है कि इससे आगे वेदमाता का स्तवन नहीं रहा, यहीं तक वेदमाता का अध्ययनाध्यापन समाप्त हो जाता है।

2. दूसरी आपत्ति यह है कि– **जिस कोश से हमने वेद को उठाया था, उसी के अन्दर हम इस वेद को रख देते हैं।** इससे भी यह परिणाम निकलता है कि इस वेद का अध्ययनाध्यापन पूर्ण हो चुका है, इसलिए इस वेद को हमने कोश में सुरक्षित रख दिया है।

3. तीसरी आपत्ति यह कि– **अथर्ववेद से हमने अपना इष्ट-सम्पादन कर लिया है**, अर्थात् जीवन में जो कुछ हमें चाहिए था, उसे हमने प्राप्त कर लिया है। अथर्ववेद द्वारा और किसी अभीष्ट का सम्पादन शेष नहीं रहा। इस प्रकार इन तीन वर्णनों से यह ही प्रतीत होता है कि अथर्ववेद की समाप्ति 19 वें काण्ड की समाप्ति तक हो जाती है, अर्थात् 20 वां काण्ड अथर्ववेद का मौलिक अवयव नहीं।

इन तीनों आपत्तियों पर यदि सूक्ष्मता से विचार किया जाय, तो परिणाम अन्य प्रकार का प्रतीत होने लगता है–

1. प्रथम मन्त्र में वेद-स्तवन का फल दर्शाया है– सात विषयों का परिज्ञान, अर्थात् आयु**:** सम्बन्धी विज्ञान, प्राणसम्बन्धी विज्ञान, प्रजासम्बन्धी विज्ञान, पशुसम्बन्धी विज्ञान, कीर्त्ति अर्थात् यश**:**सम्पादनसम्बन्धी विज्ञान, तथा द्रविण अर्थात् धनोपार्जन

सम्बन्धी विज्ञान, और ब्रह्मज्योतिःसम्बन्धी विज्ञान है। इन विज्ञानों में से छह तो लौकिक विज्ञान हैं, और एक आध्यात्मिक विज्ञान। इससे ज्ञात होता है कि अथर्ववेद के 01 से 19 तक के काण्डों में लौकिक बुद्धि वाले अध्येताओं के लिए प्रधानतया लौकिक विज्ञानों का ही प्रतिपादन हुआ है, और उन लौकिक बुद्धिवाले अध्येताओं के लौकिक विज्ञानों को थोडा आध्यात्मिक विज्ञान का भी पुट दे दिया है। यही लौकिक भावना **कृतमिष्टम्** द्वारा भी सूचित की गई है। **इष्ट** का अर्थ यज्ञ कर्म भी है, जैसे कि **इष्टापूर्त** शब्द में **इष्ट** का अर्थ है। तथा **इष्ट** का अर्थ **एषणाओं के विषय** भी होता है। सांसारिक लोग धनैषणा, पुत्रैषणा और लोकैषणा(कीर्त्ति,यश) के वशीभूत होते हैं। इन्हें **ब्रह्मवर्चस्** द्वारा यत्किंचित् ब्रह्मसम्बन्धी विज्ञान भी दिया गया है, ताकि ये इन एषणाओं से उठकर अगले आश्रम की ओर पग बढा सकें। इस उद्देश्य से, तथा जो सत्कर्मा व्यक्ति इन लौकिक एषणाओं पर विजय पा चुके हैं। उन के लिए अध्यात्मविषय प्रधान बीसवां काण्ड है।

बीसवें काण्ड के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस काण्ड में अध्यात्मविषय प्रधान रूप से वर्णित है, और लौकिक विषय गौणरूप से। इसलिए सर्वसाधारण लौकिक बुद्धिवाले लोगों के लिए ज्ञेय तत्त्व 19 वें काण्ड तक समाप्त हो जाते हैं। ऐसे लोग 20वें काण्ड के विस्तृत अध्यात्म-विज्ञान के अधिकारी नहीं। परन्तु अध्यात्मपरायण लोगों के लिए विस्तृत अध्यात्मज्ञान की आवश्यकता है, जिसकी पूर्त्ति 20 वें काण्ड द्वारा होती है।

इस समाधान की यथार्थता में यजुर्वेद का भी उद्धरण देना आवश्यक प्रतीत होता है। यजुर्वेद कर्मप्रधान वेद है,- यह सर्वप्रसिद्ध है। इसमें चालीस अध्याय हैं। एक से अडतीस अध्यायों में मुख्यरूप में कर्मकाण्ड का वर्णन हुआ है, परन्तु बीच-बीच में गौणरूप से अध्यात्मविषयों का भी वर्णन हुआ है। 39 वें अध्याय में प्रायः अन्त्येष्टि-संस्कार के मन्त्र हैं। 39 वें अध्याय के अन्त्येष्टि-सम्बन्धी मन्त्रों द्वारा यह दर्शाया है कि 1-38 अध्यायों के कर्मकाण्ड की समाप्ति के साथ मानुषजीवन की भी अन्त्येष्टि हो जाती है, अर्थात् इससे आगे कर्मकाण्डी के लिए और कोई कर्त्तव्य नहीं रहता। परन्तु जो व्यक्ति कर्मकाण्ड द्वारा अपने मनों और आचरणों को पवित्र कर अध्यात्ममार्ग का अवलम्बन करना चाहते हैं, उनकी आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए यजुर्वेद के 40 वें अध्याय की आवश्यकता थी। इसलिए कर्मकाण्ड की दृष्टि से चाहे यजुर्वेद की समाप्ति 39 वें अध्याय की समाप्ति तक समझी जाय, परन्तु अध्यात्मज्ञानाभिलाषी के लिए यजुर्वेद की समाप्ति 40वें अध्याय पर ही होती है। तथा ऐसे अध्यात्मज्ञानी के शरीर की समाप्ति भी अन्त्येष्टि संस्कार द्वारा ही होनी चाहिए,- इसकी सूचना **भस्मा॑न्तं॒ शरी॑रम् (40/15)** द्वारा दी गयी है। इसी 40 वें

अध्याय के अनुसार प्रसिद्ध **ईशावास्योपनिषद्** की रचना हुई है, और यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण के अध्यात्म विज्ञान के अनुसार **बृहदारण्यकोपनिषद्** की रचना हुई है।

इसलिए यजुर्वेद का 40 वां अध्याय जिस प्रकार यजुर्वेद का ही अन्तिम अध्याय है, इसी प्रकार अथर्ववेद का 20 वां काण्ड भी अथर्ववेद का अन्तिम काण्ड है, अर्थात् मौलिक अवयव है। ऐसा अथर्ववेद के बीसवें काण्ड की आध्यात्मिक व्याख्या करने वाले प्रो. विश्वनाथ विद्यालंकार ने लिखा है।

–प्रो. दिनेशचन्द्र शास्त्री

✦✦✦

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 10, No. 18 (1-7) January-June 2022 ISSN 2277-4351
UGC CARE listed (Arts & Humanities) RNI : UTTMUL 2012/53882

वेदानां पुनः प्रसारोपायाः

–स्व. पं. युधिष्ठिरमीमांसकः

वेदानां पुनः प्रसारोपायचिन्तनात् पूर्वमेतद्विज्ञातव्यं यत्किमत्र कारणं यस्मात् परमविद्यानाम् आकरभूतानाम् अपि वेदानां प्रसार उत्तरोत्तरं न्यूनतां भजत इति। **'नहि रोगनिदानमविज्ञाय चिकित्सा प्रवर्तते'** इति न्यायानुसारं वेदप्रसारह्रासकारणविज्ञाते सत्येव तत्प्रसारोपायानां चिन्ता सम्भवति। तस्मात् प्रथमं वेदज्ञानस्य ह्रासकारणान्युच्यन्ते। तत्र कानिचित् कारणानि भारतीयपरम्पराप्रसूतानि सन्ति, कानिचिच्च साम्प्रतिकैर् ईसाई–यहूदी–मताग्रहगृहीतैः पाश्चात्यविद्वद्भिरुत्पादितानि। तत्र तावत् भारतीयपरम्पराप्रसूतानि वेदज्ञानस्य ह्रास–कारणानि–

1. वेदाध्ययनस्य श्रौतकर्मानुष्ठादिष्वदृष्टोत्पादनमेव फलम्। केवलमदृष्टार्थम्, न तस्य दृष्टफलार्थतेत्येकम्।

एतन्मतस्य प्रसारात् केषाञ्चिद् याज्ञिकानां मते **'मन्त्रा अनर्थकाः**[1]**'** इत्येतन्मतं प्रचारमलभत। तेन वेदानां मानवजीवनेन सह यः साक्षात् सम्बन्ध आसीत्, स प्रणष्टः। तन्नाशाद्वेदाध्ययनमनर्थकं मन्यमानास्तं प्रायेण परिहापितवन्तः।

2. वेदाः केवलं यज्ञार्थं प्रवृत्ताः, नातोऽन्यद् किमपि तेषां प्रयोजनमिति **द्वितीयम्।**

एतन्मतस्य प्रादुर्भावाद्वेदानामाधिदैविकाध्यात्मिकयोर्विज्ञानयोः साकं यः साक्षात् सम्बन्धो वर्तते, स नाशमुपगतः। तन्नाशाद् वेदा निष्प्रयोजनत्वमापन्नाः। तेन 'प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते' इति न्यायाद् वेदाध्ययनाद् ग्लायन्तो वेदाध्ययनमत्यजन्।

3. यज्ञा अपि केवलमदृष्टार्था एव, न तेषामन्यत् किमपि लौकिकं प्रत्यक्षं फलमिति **तृतीयम्।**

एतन्मतस्य प्रसाराद्यज्ञानां **'सृष्टिविज्ञानपरिज्ञापनरूपस्य'** मुख्यस्य प्रयोजनस्य परित्यागात् साम्प्रतिकास्तर्कप्रधानाः श्रद्धाविरहिता मानवास्ततो ग्लायन्तो यज्ञान् अत्याक्षुः। यज्ञकर्मणां लोपाद् ब्राह्मणवृत्तेर्नाशः, तन्नाशात्तेषां वेदाध्ययनप्रवृत्तिरपि संकोचं प्राप्ता।

---

1. 'यदि मन्त्रार्थप्रत्यायनायानर्थकं भवतीति कौत्सः, अनर्थका हि मन्त्रा इति'। निरुक्ते (1।15); पूर्वमीमांसायां (1।2।31, 39) च एतन्मतमुपस्थाय बहुभिर्हेतुभिर्निराकृतम्।

4. स्त्रीणां शूद्राणां च वेदश्रवणेऽपि नाधिकारः[1], कुतस्तदध्ययने धारणे चेति **चतुर्थम्।**

स्त्रीणां वेदाध्ययनप्रतिषेधात् पत्न्यो वेदज्ञानविरहिता अभूवन्। तासां च वैदिकज्ञानसंस्काररराहित्यात् ता अज्ञानावृतचेतसोऽजायन्त। तेन तासामपत्यान्यपि वैदिकसंस्कारविरहितानि समभूवन्। तेन कुलान्यकुलतां गतानि। शूद्राणां वेदश्रवणाधिकारस्याप्यपहरणाद्वैदिकसंस्काररराहित्याच्च ते आर्याः सन्तोऽप्यनार्याः संवृत्ताः। एवं मनुष्यसंख्यायाः स्त्रीरूपोऽर्धो भागः शूद्ररूपश्चान्यस्तदर्धो भागोऽर्थान्मानवसंख्यायाः 3/4 पादत्रयात्मको भागो वैदिकसंस्काररराहित्यादनार्यत्वं प्राप्नोत्। तदुक्तं भगवता मनुना–

> **'कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदाऽनध्ययनेन च।**
> **कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च॥** 3।63॥ इति।'
>
> **शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।**
> **वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च॥** 10।43॥ इति च।

यदा क्षत्रियजातयोऽपि वेदाऽनध्ययनेन वैदिकक्रियालोपैश्च वृषलत्वं गताः, तर्हि स्त्रीणां शूद्राणां तु का कथा, यत्राऽज्ञानान्धस एव साम्राज्यं विद्यते?

5. पाश्चात्यशिक्षायाः प्रभावेण तपोज्ञानोपेतानां **ब्राह्मणानामुपेक्षाऽनादरभावश्चेति पञ्चमम्।**

जगति किलैष नियमः– **'समाजे यादृशस्य पूजा भवति, सर्वो जनः तादृशमात्मानं भावयितुं यतते'** इति। अतएव पाश्चात्यशिक्षाप्रभावेण पाश्चात्यभाव-भाषादीक्षितानां धनिनां चानार्याणामपि सम्मानभावनायाः प्रसाराद् ब्राह्मणा अपि आंग्लभाषाध्ययनेन येन केन च प्रकारेण धनोपार्जनमेवात्मनः श्रेयः पश्यन्तः कुलपरंपरागतं वेदाध्ययनं पर्यत्याक्षुः।

अथेदानीं पाश्चात्यविद्वद्भिरुत्पादितानि तानि कारणानि समुपस्थाप्यन्ते, यैर्वेदप्रचारस्य सम्प्रति विशेषतो **ह्रासः** संजातः–

1. बहूनाम् ईसाईयहूदीमताग्रहगृहीतानां मैक्समूलरप्रभृतीनां विदुषाम् 'अनुसन्धानकर्म' व्याजेन वैदिकवाङ्मयविषये अनर्गलप्रलापद्वारा तन्निन्दापुरःसरं तत्राश्रद्धोत्पादनं **चेत्येकम्।**

अनेके पाश्चात्या विद्वांसः संस्कृतभाषायां वैदिकवाङ्मये च कं भावं मनसि निधाय प्रयत्नमकार्षुरित्यस्य ज्ञापकानि तेषां कतिपयवचनान्युद्ध्रियन्ते। येन पाश्चात्यविदुषां तथाकथितवेदानुसन्धान-कार्ये प्रवृत्तिर्विस्पष्टतां गमिष्यति। तत्र प्रथममतिप्रसिद्धस्य वैदिकवाङ्मये कृतपरिश्रमस्य मैक्समूलरस्यैव वचनान्युपस्थाप्यन्ते–

---

1. द्र.–'अथास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणं, वेदोच्चारणे जिह्वाच्छेदः, धारणे शरीरभेद इति' (वे.द.शं. भाष्ये 1।3।38)। स्त्रीशूद्रौनाधीयाताम् इति च।

(क) 'वैदिकसूक्तानां एका महती संख्यैतादृशी वर्तते, या परमबालिशा जटिला अधमा साधारणी चास्ति' इति।[1]

(ख) 'मदीयो वेदानुवादो मदीयं (सायणभाष्यसहितम् ऋग्वेदस्य) संस्करणं चोत्तरकाले भारतस्य भाग्यविधानेऽत्यन्तं प्रभविष्यति। यतोऽयं (ऋग्वेदः) तेषां धर्मस्य मूलमस्ति। अहं निश्चयेनानुभवामि यद् (भारतीयधर्मस्य) इदं मूलं कीदृगस्तीत्यस्य निदर्शनं **गतत्रिसहस्त्रवर्षेषु समुपजायमानानां प्रभावाणां समूलोत्पाटनाय** एकः प्रधानभूत उपायोऽस्ति' इति।[2]

(ग) 'संसारस्य सर्वधर्मग्रन्थेषु नवीना-प्रतिज्ञा' (ईसाप्रोक्ता बाईबलनामा) ग्रन्थ उत्कृष्टो वर्तते। तदनुकुराननामा ग्रन्थ, य आचारशिक्षायां नवीनप्रतिज्ञाया एव रूपान्तरमस्ति, स्थापयितुं शक्यते। तत्पश्चात् प्राचीनाप्रतिज्ञा, दाक्षिणात्यं बौद्धपिटकम् वेदाः, अवेस्ता इत्येवमादयो ग्रन्थाः सन्ति।[3]

(घ) मैक्समूलरस्य वैदिकवाङ्मयकार्यं तन्मित्राण्यपि कया दृष्ट्याऽपश्यन्, तदर्थं ई.बी. पुसे-नामकेन तन्मित्रेण मैक्समूलराय प्रहितस्य पत्रस्य द्रष्टुमर्हमेतद्वचनम्–

'भवतामेतत् (=वेदविषयकं) कार्यं **भारतीयान् ईसाईमतानुयायिनो विधातुं क्रियमाणेषु प्रयत्नेषु नवयुगप्रवर्तकं** भविष्यति' इति।

(ङ) अलबर्टवेबरनामा प्राध्यापकः प्राह– 'कृष्णस्य मतं, यस्य प्रभावः सम्पूर्णे महाभारते व्याप्तोऽस्ति, द्रष्टुमर्हं वर्तते। तत्तत्र ईसाईकथाया अपरपाश्चात्यमतस्य प्रभावं चोपस्थापयति' इति।[4]

(च) अत एव ईसाईमतपक्षपातिनोऽनेके विद्वांसः–'महाभारतग्रन्थ ईसाप्रादुर्भावादुत्तरं चतुर्थशत्यां संग्रथितः'–इति लिखन्ति।

(छ) मोनियरविलियम्सनामा प्राध्यापको, येन संस्कृताङ्गलभाषाया महान् कोशो निर्मितः, स स्वकोशरचनाप्रयोजनं तदुपोद्घात इत्थं प्रदर्शयति–

'यदिदं संस्कृताङ्गलभाषाकोषनिर्माणकार्यं संस्कृतग्रन्थानुवादकार्य्यं च बोडननिक्षेपनिधि (ट्रस्ट) द्वारा सम्पाद्यते, तद् **भारतीयान् ईसाईमते दीक्षयितुं प्रवृत्तानां साहाय्यप्रदानायैव क्रियते**' इति।

सत्येवं, को नाम विपश्चित् मैक्समूलरादीनाम् अनुसंधानमिषेण कृते कार्ये विश्वसेत्? आधुनिकाः पाश्चात्यशिक्षादीक्षिता भगवद्वचनमिव पाश्चात्यविदुषां मतेषु

---

1. मैक्समूलरस्य भाषणम्, संख्या 4, सन्, 1882।
2. मैक्समूलरेण स्वपत्न्यै लिखितस्य (सन् 1866) पत्रस्यांशः।
3. मैक्समूलरः स्वपुत्राय प्रहिते पत्र एतद् वचनं लिखितवान्।
4. द्र.–संस्कृतसाहित्यस्येतिहासे (सुलभे संस्करणे, सन् 1914) 189 तमे पृष्ठे टिप्पणी।

श्रद्धधानाः **अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः** इति (मुण्ड. 2।9) न्यायानुसारं स्वयं नष्टा अपरानपि भारतीयान् नाशयन्ति।

2– भाषाविज्ञानमिषेण दैव्यां वाचि वैदिकवाङ्मये च भीषणप्रहारो **द्वितीयम्।**

पाश्चात्यैर्विद्वद्भिः कतिपयानां भाषाणां तुलनात्मकमध्ययनं कृत्वा **भाषाविज्ञाननामैकं** नूतनं मतमाविष्कृतम् यद्यपि तदत्यन्तं दोषपूर्णं विद्यते, तथापि तदाश्रित्य दैव्या वाचो भारोपीय–सर्वभाषाजननीत्वे विस्पष्टं प्रतीयमानेऽपि तां सर्वभाषाजननीरूप–स्वस्थानतः प्रच्यावयितुं भारोपीयनाम्ना कल्पितामसिद्धमूलां कांचन शशशृङ्गायमाणां भाषां वर्त्तमानानां भारोपीयभाषाणां जननीं स्वीकृत्य ग्रीक्लेटिन् भाषादिवत् तस्याः पौत्रस्थानी दैवी वाक् इति मतमुद्घोषयांचक्रुः।

नैतावदेव, अपितु यथा प्राकृताः पांशुलपादा जना अज्ञानेन सम्यगुच्चारणाऽसामर्थ्येन वा शिष्टव्यवहृतेषु शब्देषु वर्णलोपागमविकारविपर्ययादीन् कुर्वन्ति, कालान्तरे च स एवापशब्दराशिर्भाषापदं भजते, तथैवेयं दैवी वागपि कस्यांचित् पूर्वतन्यां भाषायां विकारं प्राप्य समुत्पन्नेति ब्रुवते।

अपरे ब्रुवते–पूर्वतन्यां कस्यांचित् प्राकृत–भाषायामेव संस्कारं विधाय ब्राह्मणैरियं गीर्वाणवाणी निष्पादिता इति। तदाहाध्यापको रैप्सनः–

'भारतीयार्यलिखितं वृत्तं साहित्यिकभाषासु सुरक्षितमस्ति। या व्यावहारिकभाषाभ्यो विकासं प्रापिताः।'[1]

3. डार्विनप्रतिपादितं विकासवादमनुसृत्य सत्यापितस्य भारतीयैतिह्यस्य खण्डनं विकृतकरणं च **तृतीयम्।**

यावान् भारतीयेतिहासः प्राचीनेषु ग्रन्थेषूपलभ्यते, स सर्वोऽप्यैक्यमत्येन प्रतिपादयति– 'यत् सृष्ट्यादौ मानवाः परम–ज्ञानिनोऽनेकविधशक्तिसम्पन्ना धर्मसत्त्वोपेताः परमदीर्घायुष आसन्। उत्तरोत्तरं ज्ञाने शक्तौ आयुषि च ह्रासः समजनि, मानवाश्चोपचीयमानरजस्तमस्काः संबभूवुः। एतद्विपरीतं विकासवादमतं ब्रवीति– 'मनुष्या आदौ पशुवत् जाङ्गलिका मांसाहारिणोऽज्ञानिनश्च आसन्। उत्तरोत्तरं ते विकसिताः सन्तः सभ्या अभूवन्।' नैतावदेव, अपितु 'मनुष्याणां पूर्वजा वनमानुषा आसन्, तेषां पूर्वजा वानराः, तेषां च पूर्वजा अन्ये, इत्येवं सर्वेऽपि प्राणिनः सर्वतः प्राक्समुत्पन्नाद् 'अमीबा' नाम्नः प्राणितः उत्तरोत्तरं विकसिताः सन्तो मनुष्यत्वमापुः।' एतं मतमाश्रित्यैव पाश्चात्या विद्वांसो वेदान् पांशुलपादानामविपालादीनां गीतानीति ब्रुवन्ति।

एतान्येव पाश्चात्यमतानि अस्मद्देशीयेषु विश्वविद्यालयेष्वद्यापि पाठ्यन्ते। तेनैतेषु विश्वविद्यालयेष्वधीतानां मनसि वैदिकवाङ्मये न केवलमश्रद्धैवोत्पद्यते, अपितु त एव कालान्तरे अनुसंधानकार्यं कुर्वन्तः वैदिकवाङ् मयविषये ततोऽपि हीनान् मतानाविष्कुर्वन्ति।

1. केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, अ. 2, पृष्ठ 56–57।

एतद् द्योतयितुं द्वयोर्भारतीयविदुषोर्यास्कनिर्वचनसंबन्धिमतमुपस्थाप्यते–

(क) राजवाड़े इत्युपनामा काशीनाथ आह– 'निरुक्तस्य निर्वचनपद्धतिरेतादृशी वर्तते, यत् तद् विज्ञानं विद्यास्थानं वा नैव वक्तुं शक्यते....... निरुक्तं विज्ञानं नास्ति, अपि तु विज्ञानस्योपहासो वा वर्तते..........। निरुक्तस्य निर्वचनप्रकारो भ्रममात्रं मानवमस्तिष्कस्य व्यर्थः प्रयोगो वा वर्तते। .... अहं ससाहसं वक्तुं शक्नोमि यन्निरुक्तस्य निर्वचनपद्धतिरयुक्ता (मूर्खतापूर्णा) विद्यते। पुनरपि तदद्य यावद् स्वस्थानं (वेदाङ्गत्त्वं) भजते।....... निरुक्ते बहुसंख्यकानि निर्वचनानि मूर्खतापूर्णानि सन्ति, यतस्तानि अशुद्धं सिद्धान्तमाश्रयन्ति।.......एतत्सिद्धान्ताश्रयेण बहूनि निर्वचनानि कल्पितानि।. ..... शुद्धानि निर्वचनानि त्वत्यन्तमल्पकानि विद्यन्ते इति।'[1]

(ख) अपरो भाषाशास्त्रित्वेन परमख्यातिमापन्नः सिद्धेश्वरवर्माऽऽह–

'एतेन प्रकटीभवति यद् यास्कस्य निर्वचनप्रदर्शनोत्साहः प्रमत्ततासीमां प्राप्तः' इति[2]।

"यास्कोऽतिनिर्वचनकर्त्ता आसीत्। तस्य निर्वचनमत्तता तत्कल्पनाशक्तिमुज्झितवती। तस्य कल्पनाया दरिद्रता विलक्षणा वर्तते। एतेन गम्भीरदोषेण स न केवलं व्यर्थानि शिथिलानि सारहीनानि सत्याद् दूरं गतानि निर्वचनानि करोति, अपितु प्रतीयते यत् स लक्षणादिभिरपि केषांचिच्छब्दानामर्थस्य विस्तरो भवति" इति नैव ज्ञातवान्। अत एव लाक्षणिकार्थद्योतनायापि स पृथक् निर्वचनानि आचष्टे इति[3]।

एतैरुद्धरणैरतिविस्पष्टं भवति यत्पाश्चात्यैर्विद्वद्भिरीसाईयहूदीमतपक्षपातेनानुसन्धान-मिषेण च वैदिकवाङ्मयविषये यः प्रलापो विहितः, तमेव विश्वविद्यालयेष्वधीत्य भारतीया अपि तथाविधा विद्वांसः कीदृशीं मानसिकीं दासतामभजन् इति? एते खलु पाश्चात्यदृशैव सर्वं पश्यन्ति, न तेषां स्वचक्षुर्विद्यते। अतएव **'पश्यदक्षण्वान् न विचेतदन्धः' (ऋ. 1।164।16)** इति श्रुत्या सत्यमुच्यते।

एवं वेदप्रचारस्य ह्रासकारणान्युपस्थाप्य तत्प्रतीकाराय केचन उपाया निर्दिश्यन्ते–

1. वेदानां वैदिकवाङ्मयप्रामाण्येन तादृशी वैज्ञानिकी व्याख्या कर्तव्या, येन साम्प्रतिकास्तर्कप्रधाना अपि मानवा वेदेषु श्रद्दधीरन्, तदध्ययने च प्रवर्त्तेरन्।

2. यज्ञानामपि तादृश्येव वैज्ञानिकी व्याख्या विधेया, यया वैदिककर्मकाण्डविषये लौकिकानां पाश्चात्यशिक्षादीक्षितानां च हृदयेषु श्रद्धोत्पद्येत। यज्ञानां प्रचारेण वेदाध्ययने

---

1. द्र.–'काशीनाथ राजवाड़े' द्वारा सम्पादितस्य निरुक्तस्य (पूनानगरस्थ भण्डारकरप्राच्य-विद्यानुसंधानसंस्थानतः प्रकाशितस्य) भूमिका, पृष्ठ 40-43।
2. इटिमोलोजी ऑफ यास्क, पृष्ठ 3।
3. स एव ग्रन्थः, पृष्ठ 8।

प्रगतिर्निश्चितैव।

3. वेदानामध्ययने श्रवणे च सर्वेऽधिकृताः स्युः। यः खलु वस्तुतोऽनधिकारी भविष्यति, स स्वयमेव तदध्ययनादुपरंस्यति।

एतस्मिन् विषये दयानन्दसरस्वतीस्वामिनो मतं 'वेदाध्ययने समर्था सर्वे मानवा अधिकृताः' इति नितरां सत्यं वर्त्तते। अत एव वेदाधिकारनिरूपणप्रसङ्गे तत्रभवान् सत्यव्रतसामश्रम्यप्याह'–

"शूद्रस्य वेदाधिकारे साक्षाद्वेदवचनमपि दर्शितं स्वामिदयानन्देन–'यथेमां वाचं॑ कल्या॒णीमा॒वदा॑नि॒ जने॑भ्यः। ब्र॒ह्म॒रा॒ज॒न्या॒भ्यां॑ शू॒द्राय॒ चार्या॑य च॒ स्वाय॒ चार॑णाय च' (वा.सं. 26।2)।" इति।[1]

यदि हि नाम उक्तमन्त्रानुसारं शूद्राणामतिशूद्राणामपि वेदज्ञानेऽधिकारः तर्हि स्त्रीभिः किमत्रापराद्धम्? द्विजपत्नीत्वात्तदध्ययनं प्राप्तमेव। गार्गीवाचक्नव्यादयो बह्व्यो ब्रह्मवादिन्यः पुराकल्पे बभूवुरिति वैदिकग्रन्थेष्वतितरां प्रसिद्धमस्ति।

पुराकाले स्त्रीणामपि उपनयनसंस्कारो भवति स्म। गुरोः सकाशाच्च ता वेदमधीयते स्म। तदुक्तम्–

'पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्ययनं च वेदानां भिक्षाचर्यं तथैव च॥'[2]

स्त्रीणामुपनयने मन्त्रलिङ्गमपि दृश्यते–**'भी॒मा जा॒या ब्रा॑ह्म॒णस्योप॑नीता' (ऋ. 10।109।4)** इति,

शूद्रकुलोत्पन्नानां मातङ्गादीनां बहूनां ब्राह्मणत्वप्राप्तिरितिहासग्रन्थेषु श्रूयते। ब्रह्मत्वप्राप्तिर्न वेदज्ञानमन्तरेण कथमपि सम्भवति। तस्माद् वेदाध्ययनात्तच्छ्रवणाद्वा न कश्चिदपि बलान्निरोधयितव्यः। तदैव च **'कृ॒ण्वन्तो॒ विश्व॒मार्य॑म्' (ऋ. 9।63।5)** इति मन्त्रलिङ्गानुसारं विश्वं समस्तमपि वैदिकधर्मानुयायिनं विधातुं वयं समर्था भविष्यामः। वेदस्य सर्वत्र भूमण्डले प्रसारः स्यादित्याकाङ्क्षया स्वामिदयानन्देनार्यसमाजस्य तृतीयो नियमो विहितः– **'वेदाः सर्वसत्यविद्यानामाकरग्रन्थाः सन्ति, वेदानां पठनं पाठनं श्रवणं श्रावणं च समस्तानामार्याणां परमो धर्मः' इति।**

अहो बत! वेदवैदिकमतप्रचारार्थोत्सर्गीकृतजीवनेन स्वामिदयानन्देन प्रवर्तित आर्यसमाजोऽपि स्वस्याचार्यस्याज्ञामुपेक्ष्य स्वीयपरमधर्माद् वेदाध्ययनात्सम्प्रति पराङ्मुख इव सम्पन्नः। तस्मात् **'को वेदानुद्धरिष्यति'** इति प्रश्नः सर्वदा समेषां सम्मुखं जागर्त्येव।

---

1. ऐतरेयालोचने पृष्ठ 7।
2. श्लोकोऽयं निर्णयसिन्धोस्तृतीयपरिच्छेदे 'इति यमोक्तेः' इत्येवमुद्धृतः।

4. पाश्चात्यविद्वद्भिरीसाईयहूदीमतपक्षपातेन अनुसंधानमिषेण वैदिकवाङ्मयनिन्दका ये ग्रन्था लिखिताः तेषां विश्वविद्यालयेषु पठनं पाठनं यथा सर्वथा निरुद्धं भवेत्, अस्मत्पूर्वजैर्ऋषिमुन्याचार्यवर्यैः प्रोक्तानाम् अस्मत्सत्येतिहासादिसिद्धपक्षयुतां ग्रन्थानां च पठनपाठनं यथा सम्भवेत्, तथा सामूहिकः प्रयत्नो विधेयः। येन तत्राधीता भाविनो विद्वांसो वेदनिन्दका वेदोपेक्षका वैदिकसंस्कृतिविरहिता वा नोत्पद्येरन्।

5. पाश्चात्यैर्विद्वद्भिः भाषाविज्ञान-वैदिकदेवशास्त्र-वैज्ञानिकेतिहासादिविषयान् विकासवादं वा पुरस्कृत्य भारतीयभाषा-संस्कृति-साहित्येतिहासादिविषयेषु यद्यदन्यथाप्रलपितमस्ति, तस्य तस्य प्रचारस्य निरोधाय स्वीयया भारतीयविज्ञानसिद्धदृष्ट्या भाषाविज्ञानादिविषयका ग्रन्था निर्मातव्याः। पाश्चात्यानां मतानां सम्यगालोचना बलवत् खण्डनं च विधेयम्।

6. वेदानां वैदिकवाङ्मयस्य च प्रचाराय प्राचीनानां ग्रन्थानां मुद्रणाय तादृश उपायो विधेयः, येनेमे ग्रन्थाः सर्वदा सर्वत्र सुलभाः स्युः। तत्तद्ग्रन्थोपोद्घातेषु तस्य तस्य ग्रन्थस्य विषये पाश्चात्यैस्तदनुसारिभिश्च पौरस्त्यैर्यत् किञ्चिन्मिथ्या प्रलपितम्, तस्य तस्य सप्रमाणम् आलोचना विपक्षमुखमर्दनसमर्थं खण्डनं चावश्यमुट्टंकितं भवेत्।

7. वेदप्रसाराय सुरभारतीप्रसार आवश्यकः। नहि तदन्तरेण वेदप्रचारः कथमपि सम्भविष्यति। अतः संस्कृतभाषाप्रचाराय तादृशो यत्नो विधेयः, येन पुनरियमस्माकीना राष्ट्रभाषा स्वीयं वास्तविकं पदमलङ्कुर्यात्। तदर्थं च सुगमरीत्या संस्कृतभाषाशिक्षका ग्रन्था निर्मातव्याः। स्थाने-स्थाने च संस्कृतपाठशालानां स्थापना कार्या। संस्कृतभाषाम ध्येतुमुत्साहवर्धनाय छात्रेभ्यः पुरस्कारा वृत्तयो वा प्रदेयाः।

आशासे पुरस्तान्निर्दिष्टैः कतिपयैरुपायैर्वेदानां पुनः प्रसाराय साहाय्यं लप्स्यते।

प्रसाराय च वेदानाम् उपायाश्चेह दर्शिताः।
न तु मीमांसकख्यातिं गतोऽस्मीत्यभिमानतः॥

अन्ते च

आगमप्रवणश्चाहं नापवाद्यः स्खलन्नपि।
नहि सद्वर्त्मना गच्छन् स्खलितेष्वप्यपोद्यते॥ - कुमारिल भट्टः

✦✦✦

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 10, No. 18 (8-22) January-June 2022 ISSN 2277-4351
UGC CARE listed (Arts & Humanities) RNI : UTTMUL 2012/53882

वेदविमर्शः

-प्रो. हरिश्चन्द्र रेणापुरकरः

वेदाः किलास्माकं भारतीयानां संस्कृतिसभ्यतयोः सारसर्वस्वभूता इति न तिरोहितं केषामपि विपश्चिदपश्चिमानां विद्वद्धौरेयाणाम्। वेदमूलैव भारतीया संस्कृतिः, वेदानुसारिण एवास्माकमाचारव्यवहाराः, वेदानुप्राणित एव नो धर्मः, वेदानुगृहीतान्येवास्माकं शास्त्राणि, वेदार्थनिर्णयार्थ एव चास्माकं वेदान्तः। आजन्मन आमरणान्तमस्माकं सर्वेऽपि संस्कारा अभ्युदयनैःश्रेयसिकाश्च व्यवहारा प्राधान्येन वेदानेव संश्रयन्ते। तानेव चोपजीव्य प्रवर्तन्ते साहित्य-दर्शन-कलेतिहासादिमानवप्रवृत्तयः। वेदाध्ययनपर्यवसाय्येवासीत् पुरा किल भारतीयानां शिक्षाकल्पव्याकरणनिरुक्तछन्दोज्योतिषादिवेदाङ्गानामन्येषां च शास्त्राणामध्ययनम्। साधूक्तं दर्भपवित्रपाणिना भगवता पतञ्जलिना वेदाध्ययनस्यानिवार्यतां प्रतिपादयता–"ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्चेति" ब्राह्मणेनेत्युपलक्षणम्। द्विजमात्रेण षडङ्गाध्ययनपूर्वकं वेदाध्ययनं निष्कामभावेनावश्यं कर्त्तव्यम्। द्विजमात्रेण वेदाध्ययनस्यावश्य-कर्त्तव्यतामुपोद्वलयन् भगवान् मनुरप्याह–

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥ - (मनु. 2.168)

अथ कोऽयं वेदो नाम यं वयमार्याः पदे पदे उच्चारयामः, मन्दिरे मन्दिरे बोधयामः, तीर्थे तीर्थे सनाथयामः, पथि पथि प्रथयामः, वादे वादे सिद्धान्तयामः किं बहुना यत्र तत्र सर्वत्र तस्यैवोद्घोषं कुर्मः। न केवलं वयं भारतीया एवापितु पाश्चात्यविमर्शकमूर्धन्या अपि तं मानवपुस्तकालये प्राचीनतमग्रन्थत्वेनाद्रियन्ते मानवमात्रस्य च समुन्नत्यर्थं दिव्यज्योतिःस्तंभत्वेन स्वीकुर्वते। महाप्राज्ञो मैक्समूलर महोदयोऽजूघुषत्–"Vedas are the oldest books in the library of the mankind" अर्थात् मानवपुस्तकालये वेदा नाम प्राचीनतमग्रन्थाः सन्तीति। तथैवान्यः प्रो. हीरेननामा सुप्रसिद्धोऽनुसन्धानकृदैतिहासिको विपश्चिदाचष्टे– "They (the vedas) are without doubt the oldest works composed in Sanskrit, even the most ancient Sanskrit works allude to the Vedas as already existing. The vedas stand alone in their solitary splendour standing as beacon of Divine hight for the onward march of Humanity (Historical researches by Prof. Heeren Vol. II P. 127)" "वेदा नाम प्राचीनतम संस्कृतग्रन्थाः। उपलभ्यमानप्राचीनतमसंस्कृतग्रन्थेष्वपि तेषां

तत्पूर्वसद्भाव समुल्लेखात्। तेषां केवलज्योतिर्मयत्वान्मानवमात्रस्य समुन्नत्यर्थं तेऽद्भुतदिव्यज्योतिःस्तंभत्वेनावतिष्ठन्ते" इति। एवं पक्षपातहीननैकपाश्चात्यवेदविद्भिर्वेदानामनन्यसाधारणो महिमा बहुशो गीयते।

वेदशब्दस्य व्युत्पत्तिलभ्येऽर्थे जिज्ञासायां विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा एभिर्धर्मादिपुरुषार्था इति प्रातिशाख्योक्तं वेदशब्दरूपं व्युत्पादनमेवास्माकं पुरतः समायाति। "अपौरुषेयं वाक्यं वेदः" इति सायणीयऋक् भाष्ये।

"इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेद" इति तैत्तिरीयसंहिता भाष्यभूमिकायां श्रीमत्सायणाचार्यः।

तत्रैव–

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥

इति वचनोपन्यासपूर्वकं वेदानां वेदत्वं साधयति वेदभाष्यकृच्चूडामणिर्भाष्यकारः सायणाचार्यः। आधुनिकभाष्यकृत्प्रवरेण स्वामिदयानन्देनापि स्वकीयायां ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायाम्–विदन्ति, जानन्ति, विद्यन्ते, भवन्ति, विदन्ति सर्वाः सत्यविद्याः यैर्येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदा इति वेदशब्दस्य व्युत्पत्तिःकृता। एवं 'विद्' ज्ञाने 'विद्' सत्तायां 'विद्लृ' लाभे 'विद्' विचारणे इति पठितेभ्यो धातुभ्यो 'हलश्च' इति घञि कृते विदन्ति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति विन्दन्ति–विन्दन्ते–लभन्ते, विन्दन्ते विचारयन्ति येन यत्र वा स वेद इति समामनन्ति प्रायः सर्वेऽपि वेदविपश्चितः।

वेदाविर्भावः

सर्गारम्भे हि परमकारुणिकेन जगज्जनकेन परमेश्वरेण स्वपुत्राणां मानवानां कल्याणार्थं सृष्ट्युत्पत्तिसमकालमेव साक्षात्कृतधर्मणां निर्धूतरजस्तमस्कानां परमपावनानामग्निवाय्वादित्याङ्गिरसाख्यानामाद्यानामृषीणां विमलान्तःकरणेषु स्वकीयाजरामरानादिनित्यज्ञानज्योतिषः प्रकाशः कृत इति भारतीयानां पारंपरिको दृढ़ो विश्वासः। परमकरुणावरुणालयस्य परमेश्वरस्येदं शाश्वतिकं नित्यं ज्ञानमेव वेदश्रुतिनिगमाम्नायादिनामान्तरैर्व्यपदिश्यते।

सोऽयं वेदो वेदत्वेन एकः सन्नपि विषयभेदाच्चत्वारः संजाता ऋग्यजुसामाथर्वाभिधानतया च प्रमिताः। वेदानामीश्वरप्रवक्तृत्वात् पुरुषान्तराकृतत्वाच्च तेषामपौरुषेयत्वं नित्यत्वं स्वतःप्रामाण्यं चेति समेषां प्राचां वैदिकानां सर्वमान्यो राद्धान्तः। तदिदं वेदानामपौरुषेयत्वनित्यत्व–सर्वविद्यानिधानत्वादिविषये संहिता–ब्राह्मणोपनिषत्–स्मृति–दर्शन–रामायण–महाभारतादिसकलशास्त्रप्रवराणामैकमत्यं दरीदृश्यते। प्रथमं तावद् वेदेष्वेव तेषां परमेश्वरादाविर्भावः प्रतिपादितः। तथाहि ऋग्वेदे–

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः॥

ऋग्वेद 10-71-1

अपि च

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते॥

ऋग्वेद 10-71-3

किं च पुरुषसूक्ते–

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥ ऋग्वेद 10-90-9

अथर्वण्यपि–

तस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्॥ 10-7-20॥

एवमेवान्येष्वपि बहुषु वेदमंत्रेषु स्फुटं प्रपञ्चितं भवति यद् यज्ञरूपादीश्वरादेव सर्वे वेदाः प्रादुर्भूताः इति ब्राह्मणग्रन्थेष्वपि वेदानां परमेश्वरादुत्पत्तिः प्रदर्शिता। तथाहि शतपथे मैत्रेयीमुपदिशन् याज्ञवल्क्यः कथयति–

"एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्
यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरसः"।

श.14-5-4-10 शतपथे एवाग्रे–

"अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेद" श. 11-5-7-3 इत्यस्मिन् वचने अग्निवायुसूर्याभिधर्षिषु परमेश्वरप्रेरणया ऋग्यजुःसामवेदानां प्रादुर्भावो जात इति स्पष्टमुक्तम्। तथैव **'प्रजापतिर्वा इमान् वेदानसृजत्'** इति ऐतरेयब्राह्मणवचनेऽन्येषु च नैकब्राह्मणवचनेषु वेदानामपीश्वरप्रणीतत्वं स्फुटं निगदितम्। पाश्चात्यपण्डित प्रकाण्डानामपि चमत्कृतिमादधानासूपनिषत्स्वप्याम्नायानामीश्वरोपज्ञत्वं समाम्नातम्। तथाहि बृहदारण्यके–

"अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्
यदृग्वेदो यजुर्वेदः अथर्वाङ्गिरस"

इति (बृह० 2-4-10)

भगवान् वैवस्वतो मनुरपि वेदानामपौरुषयत्वविषय आह–

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्॥ –मनु. 1-13

महाभारते भगवान् द्वैपायनोऽप्यमुमेव सिद्धान्तं प्रथयति–

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा।
आदौ वेदमयी नित्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥

सर्वेषामास्तिकदर्शनानामपि वेदानामपौरुषेयत्व–नित्यत्वादिविषये ऐकमत्यमुपजृम्भते। तद्यथा–

1. **तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्।** (वैशेषिके 1-1-3)
2. **मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्।**(न्याये 2-1-69)
3. **न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात्।** (सांख्ये 5-46)
   निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्। (सांख्ये 5-51)
4. **स एष पूर्वेषामापि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।** (योगे 1-26)
5. **चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः।** (मीमांसायाम् 1-1-2)
   नित्यस्तु स्याद्दर्शनस्य परार्थत्वात्। (मीमांसायां 1-1-18)
6. **शास्त्रयोनित्वात्।** (वेदान्ते 1-1-3)
   अत एव च नित्यत्वम्। (वेदान्ते 1-3-29)

शास्त्रयोनित्वादिति वैय्यासिकसूत्रव्याख्याप्रसङ्गे दार्शनिक प्रकाण्डाः श्रीमच्छंकराचार्यपादाः प्रपञ्चयन्ति यत्–

"महत ऋग्वेदादेःशास्त्रस्यानेकविद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत्सर्वार्थावद्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म। न हीदृशस्य शास्त्रस्य ऋग्वेदादिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यः संभवोऽस्ति" इति।

इत्थं श्रुतिस्मृतिदर्शनादिभिर्वेदानामपौरुषयत्वे समुद्घोषितेऽपि केचन बौद्धजैन–चार्वाक–ख्रिस्त–पारसीकमुहम्मदादिमतानुयायिनो अन्ये च आधुनिकज्ञान–विज्ञानविभूषिताः पाश्चात्यपौर्वात्यविमर्शकमूर्धन्याः नैवाभ्युपगच्छन्ति तत्। ऋषीनेव अत्र कर्तॄन् ते मन्यन्ते। अत्र त्वेतद् वक्तुं भवति। इह खलु ज्ञानं स्वाभाविकं नैमित्तिकं चेति द्विविधं भवति। मनुष्याणां न विद्यते स्वाभाविकं ज्ञानं काश्चन मूलप्रवृत्तीर्विहाय।

तेषां सर्वमपि विशिष्ट ज्ञानविज्ञानं सर्वथा नैमित्तिकमेव। अध्यापकग्रन्थादिनिमित्तादेव मनुष्यैर्लभ्यते ज्ञानम्। गुरुं विना न कोपि किमपि ज्ञानं प्राप्तुं समर्थो भवति। तिरश्चां तु सर्वमेव ज्ञानं स्वाभाविकमेव। अतएव महाज्ञानविज्ञानयुक्तस्यापि नरस्य शिशुर्जलसंतरणं नैव जानाति शिक्षकं विना यत् पशुशिशवो जन्मत एव जानन्ति तेषां सर्वस्यापि ज्ञानस्य स्वाभाविकत्वात्। यदि हि नाम ऋषयो मन्त्रकर्तार आसन् तर्हि कुतस्तेषां पूर्वेषामृषीणां ज्ञानोपलब्धिः। यद्युच्यते स्वत एव तन्न घटते निमित्ताभावात् सर्वस्य च नरज्ञानस्य

नैमित्तिकत्वात्। विकासवादिदृष्ट्या तु तैः ज्ञानशून्यैरविकसितमस्तिष्कैरेव भाव्यम्। वेदानां ज्ञानविज्ञानकोषत्वं सर्वाधिकप्राचीनत्वं च दृष्ट्वा नैतद्वक्तुं शक्यते। अतस्तेषामाद्याना-मृषीणामपि केनापि गुरुणा भाव्यमेव। सर्गारम्भे स एव परमेश्वरस्तेषामपि गुरुणामादिगुरु-रासीत्। अयमेव सिद्धान्तो भगवता पतञ्जलिनापि निगदितः **"स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्"** योग. 1.26 इति सूत्रं प्रणयता। अतः खलु प्राचामाभाणको यत् **"ऋषयो मन्त्रद्रष्टारो न तु कर्त्तारः"** इति।

ये त्ववरकालीना मतवादिनः स्वस्वधर्मग्रन्थानेवेश्वर ग्रन्थत्वेनोपकल्पयन्ति तत्तु सर्वथा तर्कविरुद्धमेव तेषामवरकालीनत्वादीश्वरे च पक्षपातित्व दोषसंभवात्। प्राच्यविद्यानुसन्धानधुरन्धरेण प्रो. मैक्समूलरमहोदयेन ख्रिस्तमतावलंबिना सतापि नूनं साधूक्तम्–

"If there is a God What has created heaven & earth it will be unjust on His part if He deprived millions of souls born before Moses of His devine knowledge. Reason and Comparative study of religions declare that God gives His devine knowledge to mankind from His first appearance on earth (Science of Religion)"

अर्थात् यद्यस्ति द्यावापृथिव्योर्निर्माता कश्चित्तत्परमेश्वरः तर्हि नितान्तमन्याय्यम-भविष्यत्तस्य यदसौ मूसातः प्राक् समुत्पन्नांल्लक्षोत्तरमानवान् स्वकीयदिव्यज्ञानाद् वञ्चितानकरिष्यत्। तर्कः धर्माणां तुलनात्मकानुशीलनं च घोषयतो यत् परमेश्वरो मानवसर्गारम्भ एव स्वकीयं दिव्यं ज्ञानं प्रयच्छति। एतत्तर्कानुसारमपि वेदानामीश्वरीयज्ञानत्वं साधूपपद्यते।

वेदानां सर्वविद्यानिधानत्वम्–

अतिपुरातनकालादारभ्याद्ययावत् संजातानां प्रायः सर्वेषामप्याचार्यमहर्षीणामयमपरो वेदविषयकः प्रसिद्धः राद्धान्तो यद् वेदा न केवलं कर्मकाण्डात्मका एवापितु भूतभव्यभविष्योपयोगि-सकलविद्यानामाकरग्रन्था इति। वेदा नाम निखिलज्ञानविज्ञानराशिरिति भारतीयानां परंपराप्राप्तो दृढ़ो विश्वासः। भगवता वैवस्वतमनुना अस्मिन्विषये यदादिष्टं तत्तु नितरां महत्त्वपूर्णम्। स हि भगवानति प्राचीने काले उच्चैरुदघोषयत्–

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति।। –मनु. 12.100

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति।। –मनु. 12.97

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुःसनातनम्।
अशक्यञ्चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः।। –मनु. 12.94

बिभर्ति सर्व भूतानि वेदशास्त्रं सनातनम्।
तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम्॥ –मनु. 12.99

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन्।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ –मनु. 12.102

अहो वेदानामनन्यसाधारणं महत्त्वं, सर्वविद्यानिधानत्वं, सर्वशास्त्रमूलत्वं च महता कण्ठेन प्रगीतं भगवता मनुना। तेनैव भगवता मनुनाऽन्यत्र पुनरुद्घुष्टम्। **"सर्वज्ञानमयो हि सः"** **"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्"** मनु. 1.125 **"धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः"** मनु. 1.132 इति। भगवान् मनुः स्वयं राजाऽऽसीत्। तस्य राज्य प्रशासने सेनापतिपदं, राज्यपालपदं, नगररक्षकपदं, न्यायाधीशपदमन्यानि च महत्त्वपूर्णानि राज्यपदानि केवलं वेदविदेवालंकर्तुं पारयति स्म। अद्यत्वे न दृश्यते कुत्रापि समाजे वेदविदुषामीदृशी प्रतिष्ठा संभावना वा वेदाध्ययनस्याशुद्धत्वादपूर्णत्वाच्च। अयमेव वेदविषयको राद्धान्तस्तत्रभवता भगवता कृष्णद्वैपायनेनापि प्रतिपादितः। तथाहि–

यानीहागमशास्त्राणि याश्च काश्चित्प्रवृत्तयः।
तानि वेदं पुरस्कृत्य प्रवृत्तानि यथाक्रमम्॥ म.भा.अनु. 122-4

ब्रह्मज्ञाननिरतेन भगवता याज्ञवल्क्येनाप्युक्तम्

न वेदशास्त्रादन्यत्तु किंचिच्छास्त्रं हि विद्यते।
निःसृतं सर्वशास्त्रं तु वेदशास्त्रात् सनातनात्॥

अपि च शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त-छन्दोज्योतिष-धर्मशास्त्र-पदार्थविज्ञान-साहित्यकला-शिल्प-राजनीति-धनुर्वेदायुर्वेदगन्धर्ववेदादिशास्त्राणामद्यत्वे समुपलभ्यमानाः सर्वेऽप्याकरग्रन्थाः स्ववेदमूलकत्वं सोरस्ताडं घोषयन्ति।

परब्रह्मनिःश्वसितमुत वेदानां सर्वविद्यानिधानत्वे सत्यपि कोऽवसरस्तत्तच्छास्त्र-प्रवचनस्य इति शङ्कायामुच्यते। सर्गारम्भे हि सर्वेऽपि मानवा निष्कलुषबुद्धयः सत्त्वप्रधानाः अतएव साक्षात्कृतधर्माण आसन्। ते वेदादेव सकलज्ञानविज्ञानं साक्षात्कृतवन्तः। नासीत्तदा वेदातिरिक्तात्कस्याप्यन्यशास्त्रस्यावश्यकता। किन्तूत्तरकाले यथा यथा मनुष्याः अपचीयमानसत्त्वा उपचीयमानरजस्तमस्काः सन्तो वेदरहस्यावगाहनं कर्तुमसमर्था बभूवुस्तथा तथा तानल्पमेधसो नरान् वेदमन्त्रगता विविधाः विद्याः सम्यग् बोधयितुं महर्षिभिर्विरचितानि विविधानि शास्त्राणि। इमामेव शास्त्रावतारकथां भगवान् यास्काचार्यः स्वकीये निरुक्तशास्त्रे कथयति–

"साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् संप्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च।" (नि. 1-20)

भगवता याज्ञवल्क्येनापि स्पष्टीकृतोऽयमेव शास्त्रोत्पत्तिप्रसङ्गः शब्दान्तरैः तद्यथा–

दुर्बोधं तु भवेद्यस्मादध्येतुं नैव शक्यते।
तस्मादुद्धृत्य सर्वं हि शास्त्रं ऋषिभिः कृतम्॥

वेदसंरक्षणम्

ईदृशानां महामहिममण्डितानां वेदानामद्य यावद् वर्णमात्रेणाप्यविकृततया संरक्षणमपि भुवनेऽद्वितीयमेव। पुरा किल "ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्चेति" शास्त्रवचनं प्रमाणीकृत्य प्रायः सर्वेऽपि ब्राह्मणा निष्कामबुद्ध्या वेदाध्ययनं कुर्वन्ति स्म। लेखनं मुद्रणं वा प्रायः सर्वैः सर्वत्र ज्ञानरक्षणार्थमुपयुज्यते। मिस्रदेशीयैः पर्णलेखनेन खाल्डिदेशीयैरिष्टका लेखनेन स्वकीयं परंपराप्राप्तं ज्ञानं संरक्षितमिति इतिहासविदो जानन्ति। अस्मत्पूर्वजैरपि ताडपत्रादिषु लिखित्वा समग्रं वाङ्मयं सुरक्षितम्। परं मन्त्रमयानां वेदानां संरक्षणं ताडपत्रलेखनेनेष्टिकालेखनेन वा नैव भवेदिति विजानद्भिर्मन्त्रद्रष्टृभि-ऋषिभिर्वेदरक्षणार्थं कोऽप्यपूर्व एवोपायोऽवलंबितः। लेखकानामनवधानेनाज्ञानेन लेख्यपत्रादीनां दोषेण च लिखितग्रन्थेष्वपि बहवो दोषाः संभवन्ति। अत एव स्मृति शक्तिमवलम्ब्य भारतीयब्राह्मणैरनादिकालादारभ्य वेदरक्षणं कृतम्। संपूर्णोऽपि वेदराशिर्वेदपाठकानां जिह्वाग्रेऽद्यापि वर्णमात्रस्याप्यविकृततयाऽक्षुण्णो वर्तते।

वेदरक्षणार्थं स्मृतिसहाय्यं लेखनविद्याऽभावेन नैवाङ्गीकृतं भारतीयैः। प्रागैतिहासिक-कालादेव लेखनकला भारतीयानां सुविदिताऽऽसीदिति स्पष्टं भवति ऋग्वेदीयदशम-मण्डलांतर्गतस्योल्लेखेन। परं लिखितग्रन्थेष्वपि लेखकानां पाठकानां वा प्रमादेन पाठभेदाः संभवन्त्येव। अत एव सुविदितामपि तां लेखनकलामनाश्रित्य ज्ञानविज्ञाननिधिभूता इमे वेदाः तपोनिष्ठैर्ब्राह्मणैर्महता प्रयत्नेन जिह्वाग्र एव संरक्षिताः। वेदरक्षणार्थं ब्राह्मणैरष्ट विकृतिमयमद्भुतं वेदपठनतन्त्रं विनिर्मितं पुराकाले।

जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डो घनो रथः।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः॥

इत्यस्मिन् श्लोके प्रोक्तानामष्टविकृतीनामाधारेणैक एवं वेदमन्त्रः अष्टविधरूपेण पठ्यते। तथा पठनेन पदमात्रा वर्णमात्राविकृतिरपि नैव संभवतीत्यहो महदाश्चर्यम्।

वेदार्थानुशीलनम्–

किन्तु केवलमन्त्र पाठापेक्षया वेदमन्त्रार्थज्ञानं तदनुगुणमाचरणमेव सुतरां श्रेयः साधकमिति समामनन्ति शास्त्रप्रवचनकाराः। यथा भगवान् पतञ्जलिर्महाभाष्ये–**"एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग् भवति"** इति।

भगवान् यास्काचार्यस्तु स्वकीय निरुक्तशास्त्रे अर्थज्ञानं विना केवलमंत्रपाठकान् भारवाहिजडस्थाणुना तुलयन्नाह–

स्थाणुरयं भार हारः किलाभूदधीत्य वेदं न विज्ञानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा।। –निरु.1.10

अत एवाष्टविकृतियुतपाठद्वारा वेदसंरक्षणेन साकं वेदमन्त्रार्थानुशीलनमपि प्राचीनाचार्यमहर्षिभिर्महता प्रयत्नेन विहितम्। पुरा काले वैदिकभाषायाः सर्वत्र प्रसृतत्वाद् वेदार्थबोधे न कापि बाधा विप्रतिपत्तिर्वाऽनुभूयते स्म। किन्तु गच्छति काले वेदाः तथा विलुप्तार्था बभूवुर्यथा कौत्सादयः केचन वेदमन्त्राणां निरर्थकतामेव जगुः। तदा परमकारुणिकैर्वेदविपश्चिद्भिर्निरुक्तादयो वेदव्याख्यापथप्रदर्शकाग्रन्था विरचिताः। तथा च श्रीमत्स्कन्दस्वामी, उद्गीथवेङ्कटमाधव-आत्मानन्द-आनन्दतीर्थ-सायण-महीधर-उव्वट-दयानन्दप्रभृतिभिराचार्यवर्यैर्वेदभाष्ये महान् परिश्रमो विहितः। अर्वाचीनकाले विल्सन-ग्रिफिथ-राथ-ग्रासमन-लुडविग-गेल्डनर-ओल्डेनबर्ग-व्हिटने-बेन्फी-मैक्समूलरमैक्डोनेल-प्रभृतिभिर्वैदेशिकवेदविमर्शकैरपि आंग्ल-फ्रेञ्च-जर्मनादिभाषासु वेदानुवादाः कृताः। संस्कृतभाष्यकृत्सु सायणाचार्यस्यैव भाष्यं संपूर्णं लभ्यते सर्वोपरि च गण्यते। तस्यैव प्रभावः प्रामुख्येन पाश्चात्यवेदवित्सु जागर्ति। तत्रापि–राथ-ग्रासमन-गेल्डनरप्रभृतिभिस्तुल-नात्मकभाषाशास्त्रानुसंधित्सुवेदविद्भिरैतिहासिकपद्धतिनाम्ना काप्यन्यैव पद्धतिरवलंबिता वेदार्थानुसन्धाने। पारसीकमिस्रादिदेशानां धर्मपर्यालोचनया भाषाविज्ञानस्य पारस्परिक-तारतम्यपरीक्षया च वेदानां सत्यार्थः समुल्लसतीति पाश्चात्यानां विश्वासः। एनामेव सरणिमवलम्ब्य ते वेदार्थपर्यालोचनपरा विलोक्यन्ते। किन्तु प्राचीनाचार्यमहर्षीणां मते तु कोऽपि भूयोविद्यः तपस्वी ऋषिरेव यथार्थं वेदरहस्यं साकल्येन ज्ञातुं पारयति। तथाहि यास्काचार्यः–

"न ह्येषु प्रत्यक्षमस्त्यनृषेरतपसो वा पारोवर्यवित्सु तु खलु वेदितृषु भूयोविद्यः प्रशस्यो भवति इत्युक्तं पुरस्तात्" नि. 13-13

वेदानां निगूढार्थरहस्यावगमाय प्राचीनैः कथं यावज्जीवं ब्रह्मचर्यपूर्वकं कठोरं तपस्तप्तं तथापि वेदरहस्यं कथं तैरज्ञातमेवातिष्ठदित्यस्मिन् विषये तैत्तिरीयब्राह्मणे सरहस्यैकाऽऽख्यायिका दीयते–

"भारद्वाजो ह त्रिभिरायुभिर्ब्रह्मचर्यमुवास। तं ह जीर्णस्थविरं शयानमिन्द्र उपव्रज्योवाच। भारद्वाज! यत्ते चतुर्थमायुर्दद्यां किमेतेन कुर्याः इति। ब्रह्मचर्यमेतेन चरेयमिति होवाच। तं ह त्रीन् गिरिरूपानविज्ञातानिव दर्शयांचकार। तेषां ह एकैकस्मान्मुष्टिमाददे। स होवाच भारद्वाजेत्याममन्त्र्य। वेदा वा एते अनन्ता वै वेदाः। एतद्वै त्रिभिरायुभिरन्ववोचथाः। अथ ते इतरदनुक्तमेव। एहि इमं विद्धि। अयं वै सर्वा विद्या इति।"

(तै ब्रा. 3-10-11-3, 4)

वेदार्थ-त्रिविध-प्रक्रिया–

एवं सर्वविद्यानिधानभूतानां वेदानां निगूढार्थरहस्यपरिज्ञानं नामातिदुष्करं कर्म। तत्र केचन साक्षात्कृतधर्माणो निर्धूतरजस्तमस्काः समासादितसकलशास्त्रविज्ञाना अलूक्षाः कुंभीधान्याः अलोलुपा विदितवेदितव्या ऋषिकल्पा एव विपश्चितः प्रभवन्ति नेतरे। एतेषां परब्रह्मनिःश्वसितभूतानामखिलविद्याधिकोषाणां दुरूहार्थपरिज्ञाननिमित्ताऽऽध्यात्मिका-धियाज्ञिकाधिदैविका इति मंत्राणां त्रिविधार्थप्रक्रिया पुराकालादेव प्रचलिता आसीत्। यदनुरोधाद् वेदमंत्राणां त्रिविधा अर्थाः क्रियन्ते। तेष्वेव ज्योतिष्परा राष्ट्रपरा इतरे च बहवोऽर्थाः समाविशन्ति। स्वयं वेदेष्वेव विविधार्थानां संकेता उपलभ्यन्ते। विविधार्थदर्शनं नाम प्राक्तनानामृषीणामतीव प्रियतमं कर्म इत्यत्र ब्राह्मणारण्यकोपनिषत्सु नैके साक्षिणः प्रसङ्गाः। भगवता यास्केन **"चत्वारि वाक् परिमिता पदानि"** (ऋग्वेद 1-164-45) इत्यादिमंत्रस्य व्याख्याने कतमानि तानि चत्वारि पदानीति विचारे "इत्यार्ष" "इति वैयाकरणाः" "इति याज्ञिकाः" "इति नैरुक्ताः" "इत्येके" "इत्यात्मप्रवादाः" इति षट् पक्षा उपस्थापिताः। प्राचीनाचार्य महर्षि-प्रतिज्ञातस्य वेदानां सर्वविद्यानिधानत्वस्य सिद्धये तदनुगुणं च तेषां गौरवातिशयसंरक्षणाय वेदमन्त्राणामनेकार्थप्रतिपादन-शक्तिरवश्यमंगीकर्तव्या इति नैरुक्तानां सर्वमान्यो राद्धान्तः। अतएव भगवान् यास्काचार्यः **"वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम्"** (ऋग्वेद 10-71-5) इत्यृगंशं स्पष्टीकुर्वन्नाह **"अर्थं वाचः पुष्पफलमाह याज्ञदैवते पुष्पफले देवताध्यात्मे वा"** इति। नि. 1-19॥ एतेन दैव्या वाचः वेदस्य याज्ञिकाधिदैविकाध्यात्मिका इति त्रिविधा अर्था भवन्तीति स्पष्टमुच्यते। यास्कोत्तरकालीनः सर्व प्रथमो भाष्यकार आचार्यस्कन्दस्वाम्यपीमामेव त्रिविधार्थप्रक्रियामुपोद्वलयन् निरुक्तटीकायामाह–**"सर्वदर्शनेषु च सर्वे मंत्रा योजनीयाः। कुतः? स्वयमेव भाष्यकारेण त्रिप्रकारस्य विषयस्य प्रदर्शनाय अर्थं वाचः पुष्पफलमाह"** (नि. 1-20) **इति यज्ञादीनां पुष्पफलत्वेन प्रतिज्ञानात्** (स्कन्द नि. टी. 7-5-36) इमामेव वेदानामनेकार्थपद्धतिमनुलक्ष्य दुर्गाचार्यो लिखति–**तत्रैवं सति प्रतिविनियोगमस्यानेकार्थेन भवितव्यम्। त एते वक्तुरभिप्रायवशादन्यार्थत्वमपि भजन्ते मन्त्राः। न ह्येतेष्वर्थस्येयत्तावधारणमस्ति, सहार्था ह्येते दुष्परिज्ञानाश्च। यथाऽश्वारोह वैशिष्ट्यादश्वः साधुः साधुतरश्च वहति, एवमेते वक्तृवैशिष्ट्यात् साधून् साधुतरांश्चार्थान् स्त्रवन्ति।**

"तत्रैवं सति लक्षणोद्देशमात्रमेवतस्मिञ्छास्त्रे निर्वचनमेकस्य क्रियते। क्वचिच्चाध्यात्माधियज्ञोपदर्शनार्थम् तस्मादेषु यावन्तोऽर्था उपपद्येरन् आध्यात्माधि-देवाधियज्ञाश्रयाः सर्व एवैते योज्या नात्रापराधोऽस्ति" (नि. 2/8 दुर्ग टी. पृ. 126) वेदशब्दानामनेकार्थविषये पुनः स लिखति **"अनुपक्षीयमाणशक्तयो हि वेदशब्दा यथा प्रज्ञपुरुषाणामर्थाभिधानेषु विपरिणममानाः सर्वतोमुखा अनेकार्थान्**

ब्रुवन्तीत्येतदनेन प्रदर्शितो भवति (नि. 1/20) सायणाचार्य पूर्ववर्ती हरिस्वाम्यपि स्वकीयशतपथभाष्ये इमामेव वेदार्थत्रिविधप्रक्रियां समर्थयन् लिखति–**मन्त्रा आधियाज्ञिकया इषेत्वादयः० त एव देवतापरत्वेनाधिदैविका त एवात्मानमधिकृताः आध्यात्मिकाः। ईशावास्यादयः आध्यात्मिका एव"** भट्टभास्करः तैत्तिरीयारण्यके **आध्यात्मिक पक्षे तु परमात्मने...........इन्द्रः ईश्वरश्च** आत्मानन्दः ऋग्वेदस्यास्यवामीयसूक्तभाष्ये स्पष्टं प्रतिजानीते–**आधियज्ञं स्कन्दस्वामिभाष्यं, निरुक्तमाधिदैवतम्। इदं तु भाष्यमाध्यात्मविषयमिति न च भिन्नविषयाणां विरोधः"** एवं वेदमन्त्राणां त्रिविधार्थप्रक्रिया प्राचीनाचार्यमहर्षीणामति पुरातनः सर्वमान्यः सिद्धान्तः। अनयैवानेकार्थशैल्या वेदानामपौरुषेयत्वं सर्वविद्यानिधानत्वमनन्यासाधारणं च गौरवं प्रख्यापयितुं संरक्षितुं च शक्यं नान्यथा।

किन्तु सायण–महीधर–उव्वटप्रभृतिभिर्मध्यकालिकाचार्यैः परम्परा प्राप्तामिमां त्रिविधार्थप्रक्रियां सर्वथा परित्यज्य केवलामाधियाज्ञप्रक्रियामेव समाश्रित्य संपूर्णं वेदभाष्यं प्रायशो यज्ञपरमेव चक्रे येन प्राक्कालीनाचार्यमहर्षिभिरसकृदुच्चैरुद्घुष्टं वेदानां गौरवातिशयं न केवलं न प्रादुरभूदपितु तिरोहितमेव। स्वकीयां वेदविषयां विचारसरणीं यजुर्वेदप्रति–पाद्यविषयां च प्रकटीकुर्वन् काण्वसंहिता भाष्यभूमिकायां सायणाचार्यः प्रतिजानीते। **"तस्मिंश्च वेदे द्वौ काण्डौ कर्मकाण्डो ब्रह्मकाण्डश्च। बृहदारण्यकाख्यो ग्रन्थो ब्रह्मकाण्डस्तद्व्यतिरिक्तं शतपथब्राह्मणं संहिता चेत्यनयोर्ग्रन्थयोः कर्मकाण्डत्वं तत्रोभयत्राधानाग्निहोत्रदर्शपौर्णमासादिकर्मण एव प्रतिपाद्यत्वात्"** अनेन स्पष्टं प्रतीयते यत् सायणाचार्यः न केवलं शतपथब्राह्मण एवापितु संहिता भागेऽपि आधानाग्निहोत्रदर्श–पौर्णमासादियज्ञकर्मणामेव प्रतिपादनं मन्यते स्म।

अनयैवाधियाज्ञिकपद्धत्या तेन संपूर्णोऽपि यजुर्वेदो व्याख्यातः यं पठित्वा न कोऽपि वेदान् सर्वविद्यानामाकरग्रन्थान् महामहिमण्डितांश्च मन्तुमुत्सहेत। क्व सा भगवता मनोः **'सर्वज्ञानमयो हि सः' 'धर्म जिज्ञासमानानां, प्रमाणं परमं श्रुतिः' "भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति"** इत्येतादृशी वेदविषयिणी महती घोषणा क्व च सायणाचार्याणां तेषु केवलमाधानाग्निहोत्रदर्शपौर्णमासादियज्ञानामेव सद्भावप्रतिज्ञा। नूनमाकाशपातालयोरन्तरमस्तिद्वयोः मध्ये। तान्येतानि वेदमहत्वापकर्षकृत्केवलाधियाज्ञिक–पद्धत्याऽनुष्ठितानि सायण–महीधर–उव्वटादि मध्यकालीना चार्यकृतानि वेदभाष्याण्येव पाश्चात्यवेदविदुषां तेषु वेदेषु गोपालक गीतकबुद्धिं बबन्धु। महीधरोव्वटकृताश्लीलवेदभाष्येण तु जनानां वेदेषु श्रद्धाबुद्धिरेव विलयं प्रयाता। संस्कृतमधीयाना अपि छात्रा वेदाध्ययनात् पराजयन्ते।

बुद्धितर्कानुमोदिता एव विचारा अस्मिन् विज्ञानप्रधान युगे प्रतिष्ठां प्राप्नुयुर्नान्ये। अतो वेदानामीश्वरीयज्ञानानुगुणा बुद्धितर्कविज्ञानसंमता च व्याख्या करणीया येन

सांप्रतिकास्तर्कप्रधाना अपि जना वेदेषु श्रद्दधीरन् वेदाध्ययने च प्रवर्तेरन्। प्रत्यक्षव्यवहारोप-योगितापेक्षया केवलमदृष्टफलानुबन्धिवेदाध्ययने न कोऽपि जनः प्रवृत्तो भवेत्। अत एव वेदानां व्यवहारोपयोगि सर्वजनहितानुबंधि च व्याख्यानं सविशेषं कार्यम्। प्राचीनाचार्यानुमत एवायं मार्गः। पूर्वनिर्दिष्टत्रिविध प्रक्रियायां सर्व एवार्था समाविशन्ति। वेदानां यज्ञपरोऽपि अर्थो भवितुमर्हति। किन्तु स एव न केवलो वेदार्थः। तेषामाध्यात्मिकाधिदैविकावप्यर्थौ नितरां महत्त्वपूर्णौ भवतः। आध्यात्मिकोऽर्थः आत्म-शरीर-परमात्मसंबन्धेन त्रिविधो भवति। आधिदैविकोऽर्थस्तु विज्ञानपर एव। स च बहुविधः। अतो वेदानां मध्यकालीनाचार्यैः कृतो यज्ञपरोऽर्थः केवलं (1/3) एकतृतीयांश एवार्थः न तु पूर्णः। किन्तु यज्ञशब्देन केवलं श्रौतयज्ञ यागादीनेव ग्रहणं नैव भवति। **"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म"** इति शतपथवचनानुसारं प्राणिमात्रकल्याणकृत्सर्वाण्यपि शुभकर्माणि यज्ञा एव भवन्ति।

अनादिकालात् सूर्यचन्द्राग्निवायुजलादिपरस्परविरुद्धस्वभावैरपि देवैरस्मिन् ब्रह्माण्डे विश्वक्षेमार्थं संपाद्यमानानामृतु-दिवस-मास-संवत्सरादिविविधयज्ञानामनुकृतिरूपेणैवाग्निहोत्र-दर्शपौर्णमासादिविविधयज्ञानां विधानं क्रियते श्रौतसूत्रकारैः सृष्टिविद्यावबोधार्थं प्रतीकरूपेण। **"यत्पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे"** इति न्यायेन सृष्टिविज्ञानस्याप्याध्यात्म एव पर्यवसानाद् वेदानामाध्यात्मिक एव मुख्योऽर्थः। स एव केवलभौतिकविज्ञानवादग्रस्तत्रस्तस्य पाश्चात्यजगतः युद्ध-बिभीषिकया च पीडितसंसारस्य क्षेमाय कल्पते।

आधुनिकवेदभाष्यकारेषु स्वामिदयानन्देनेमां त्रिविधार्थप्रक्रियां स्वप्रातिभदृशा साक्षात्कृत्य वेदविषये भगवता मनुना कृता सैव घोषणा पुनरुद्घुष्टा यत् "वेदाः सर्वविद्यानामाकरग्रन्थाः सन्ति। तेषां पठनं पाठनं श्रवणं श्रावणमार्याणां परमो धर्मः" इति। सर्वप्रथमं स्वामिदयानन्देनैव वेदेष्वाध्यात्मिकविद्यया साकं विमान-नौ-तारादि भौतिकविद्यानामप्यस्तित्वं सप्रमाणं प्रादर्शि। **"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः"** (ऋ. 1-164-46) **यो देवानां नामधा एक एव।** (ऋग्. 10. 82.3)

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥ -(यजु. 32-1)

इत्यादिवेदमन्त्रबलाद् वेदे पाश्चात्यपण्डितैः प्रकल्पितौ बहुदेवतावादः तेन सप्रमाणं खण्डितोऽग्निवाय्वादिवेदशब्दानां च परमेश्वरपरं सुसुन्दरं चारुतरं च व्याख्यानं कृतम्। किन्तु सायणादिवद् हठादाकृष्यवेदशब्दानामग्निवाय्वादीनां तेनाधियाज्ञमेव व्याख्यानं न कृतं येन वेदाः केवलमात्रं यथार्थमेव प्रवृत्ताः यज्ञातिरिक्तं च तेषां न किमप्यन्यत्प्रयोजनमिति लोकमतिर्बभूव। तस्य दुष्परिणामत्वेन वेदानां सर्वविद्यामयत्वादिमहत्त्वपूर्णाः सिद्धान्ताः खपुष्पायिताः सर्वातिशायि तेषां गौरवं विनष्टं वेदाध्ययनं च शशशृंगवत् निरर्थकमभूत्।

इदानींतनेऽपि काले श्रीमदरविन्द-भगवदाचार्यमधुसूदनओझा-दामोदरशर्मझा-स्वामि-

महेश्वरानन्दमण्डलेश्वरादिविद्वद्वरेण्यैर्वेदानामाध्यात्मिकोऽर्थोऽतिरमणीयतया कृतः क्रियते च। सुगृहीतनामधेयानां श्रीमधुसूदनओझामहोदयानां वेदानामाध्यात्मिकाधिदैविकभाष्यं तु नितरां महत्त्वपूर्णमस्ति। श्रीभगवदाचार्यमहोदयैः स्वकीये सामवेदीये "सामसंस्कारभाष्ये" श्रीदामोदरशर्मझामहोदयैः "मन्त्रार्थचन्द्रोदये" स्वामिमहेश्वरानन्दमण्डलेश्वरैश्च "ऋग्वेदसंहितोपनिषच्छतके" अग्न्यादिशब्दानां परमेश्वरपर एवार्थः कृतः। प्रायः सर्वेषामपि वेदशब्दानां **"नाम च धातुजमाह निरुक्ते" "सर्वाणि नामान्याख्यातजानीति"** नैरुक्तसमयानुसारं यौगिकं एवार्थः कृतः। स एव समीचीनो युक्तियुक्तश्च।

वेद ऐतिह्यभ्रमः–

वेदेषु शान्तनु–देवापी–सुदास–विश्वामित्र–कण्वप्रभृतीनामाख्यानानि ऋग्वेदस्य दाशराजयुद्धवर्णलिङ्गानि, तत्र तत्र गंगा–कुभा–असिक्नी–परुष्णी–वितस्ता–यमुना–सिन्धुविपाशादिनदीनां नामानि, मत्स्य–मगध–पुण्ड्र–कोशलादिप्रदेशानामानि च विलोक्य वेदेषु मानुषेतिहासं तर्कयन्ति केचन महाभागाः। किन्तु वेदानां नित्यत्वापौरुषेयत्वादिस्वीकृत्य तत्रानित्यमर्त्यानामितिहासकल्पना कथं सङ्गच्छेतेति तु विचारणीयं सुधीभिः। यत्सत्यं परब्रह्मनिःश्वसितभूतनित्येषु वेदेषु अनित्यमर्त्येतिहासप्रकल्पनं नाम वदतो व्याघात एव। उर्वशीपुरुरवसोः, वशिष्ठविश्वामित्रयोः, इन्द्रवृत्रयोः, इन्द्राहिल्ययोश्च कथांशा उपाख्यानानि च सन्ति बहूनि तत्र। किन्तु न भवन्ति तानि व्यक्तिस्थलदेश विशेषनामानि। तानि तु प्रकृतिनट्या नाट्यमानानां नित्यघटनानामालंकारिकवर्णनान्येव न त्वनित्येतिहास इति यास्क–स्कन्दस्वामि–दुर्गाचार्यप्रभृतीनां नैरुक्तानां सिद्धान्तः। तत्र कोऽयं वृत्रो नाम इति विषये यास्काचार्यः–

"तत्को वृत्रः। मेघ इति नैरुक्ताः त्वाष्ट्रोऽसुर इति ऐतिहासिकाः। अपां च ज्योतिषां च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते। तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति.... ......इत्येव वृत्रकथातत्त्वम्"। नि० 2–16॥ निरुक्तटीकायामाचार्यस्कंदस्वामिना तु वेदे इतिहासवादः स्पष्टं खण्डितः।– **"एवमाख्यानस्वरूपाणां मंत्राणां यजमानेषु नित्येषु च पदार्थेषु योजना कर्तव्या, एष शास्त्रे सिद्धान्तः। ....औपचारिको मन्त्रेष्वाख्यानसमयः, परमार्थेन तु नित्यपक्ष इति सिद्धम्" नि० 2–12** स्कन्दटीका। निरुक्तसमुच्चये आचार्यवररुचिनाप्ययमेव सिद्धान्तो निगदितः; तद्यथा–

औपचारिको मन्त्रेष्वाख्यानसमयो नित्यत्वविरोधात्।
परमार्थेन तु नित्यपक्ष एवेति नैरुक्तानां सिद्धान्तः॥

एवं प्रजापतेः सुतोपगमनं, इन्द्रस्याहिल्योपगमनमित्याद्याः कथांशाः विभिन्नतात्पर्यत्वेन व्याख्येयाः। व्याख्याताश्च ते तथा प्राचीनाचार्यैर्ब्राह्मणादिग्रन्थेषु। अतो वेदेष्वनित्यमर्त्येतिहासाभाव इत्येव सत्पक्षः।

सार्वभौमवेदसन्देशाः

मानवजीवनस्योन्नत्यर्थमावश्यकानि सर्वाण्यपि तत्त्वानि वेदे साकल्येन समुपभ्यन्ते। तत्र वैय्यक्तिकसामाजिक-राष्ट्रियादिसार्वभौमसमस्यानां सम्यक् समाधानं दरीदृश्यते। तत्र दृश्यमानाः केचन सार्वभौमसिद्धान्ताः संक्षेपतो निर्दिश्यन्ते।

1. एकेश्वरोपासना

वेदानुसारमस्य ब्रह्माण्डस्य कर्ता धर्ता संहर्ता च एक एव सर्वव्यापकः सर्वशक्तिसंपन्नोऽनाद्यनन्तो दयालुर्न्यायकारी परमेश्वरोऽस्ति। स एव इन्द्रमित्रवरुणाग्नि-यम-ब्रह्म-विष्णु-शिवरुद्रादिनामान्तरैः व्यपदिश्यते। स एवोपास्यो नान्यः। तद्यथा–

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

ऋ. 1-164-46

मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत॥ ऋ. 8.1.1

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ताऽआपः स प्रजापतिः॥ यजु. 32-1

2. विश्वबन्धुत्वम्

सर्वे मानवा तस्यैव परमेश्वरस्यामृतपुत्रा भवन्ति। अतस्तैः परस्परं स्नेहसौहार्देन वर्तितव्यम्। तेषु न कोपि ज्येष्ठः न कनिष्ठः।

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे॥ ऋ. 8.98.11

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या॥

ऋ. 10-82-3

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः॥

ऋ. 5-60-5

मनुष्यैः परस्परमेव स्नेहसौहार्देन वर्तितव्यमिति न, अपितु सर्वैः प्राणिमात्रैरपि मित्रवत् स्नेहनिर्भरं व्यवहर्तव्यमिति वेदानां महान् संदेशः–

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा
सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।। य. 36-18

3. परस्परसहयोगः ऐक्यं च

सर्वैः मनुष्यैः मिथः प्रेम्णा वर्तितव्यं, प्रीत्या भाषितव्यं, मनांसि सुसंस्कृतानि संपाद्य सत्कर्तव्यपालनं कर्तव्यं, हृदयैक्यं सुसंपाद्य सर्वदा सहयोगश्च कर्त्तव्य इति महनीयाः वेदसन्देशाः विश्वमानवेभ्यः सन्ति।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते।। ऋ. 10-191-2

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। ऋ. 10-191-4

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।

-ऋ. 10-191-3

4. त्यागपूर्वः भोगः

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।। -यजु. 40.1

इदं सर्वं विश्वं परमेश्वरेण निर्मितं व्याप्तं च। तस्योपरि तस्यैवाधिकारो भवति। तेन मनुष्येभ्यः केवलमुपयोगार्थमेव सर्वाणि वस्तूनि प्रदत्तानि। अतः मनुष्यैस्तेषां त्यागभावेन भोगः कर्त्तव्यो न लोभः ममत्वं वा तेषु करणीयम्। यतो हि धनं न कस्यापि नरस्यापि तु प्रजापतिपरमेश्वरस्यैव। अतो विश्वस्तरूपेणैवास्माभिस्तस्योपयोगः त्यागभावेन कर्त्तव्यः। अस्मिन् वेदमन्त्रे धनस्य स्वामित्वविषयकठिनतमसमस्यायाः समाधानं वर्तते। धनार्थमेव जगति सर्वदा नाना कलहा भवन्ति। धनिकश्रमिकयोर्मध्ये धनस्य स्वामित्व-विषयमधिकृत्य महान् संघर्षः दृश्यते। तेन सर्वत्र वर्गसंघर्षोऽशान्तिश्च वर्धते। किन्तु वेदस्यायमेव यक्षप्रश्नो यत् **'कस्य स्विद्धनम्'** तस्योत्तरमपिप्रश्ने एव निहितं यत् (कस्य) प्रजापतेरेव धनं न कस्याप्यन्यस्य। अतो धनार्थं कलहः न कर्त्तव्यः। कस्मिन्नपि वस्तूनि ममत्वं न स्थापनीयम्। केवलं त्यागभावेन विश्वस्तरूपेण च भोक्तव्यमित्यहो वेदानामनिरसाधारणः उदाराशयः।

5. ब्रह्मप्राप्तिरेव साध्यम्

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

– यजु. 31.18

अज्ञानांधकारात् परं ज्योतिर्मयं परमेश्वरमहं जानामि। यतो हि तं विदित्वैव नरो मृत्युपाशान्मुक्तो भवति। परब्रह्मज्ञानाद्विना मुक्तये न कोऽप्यन्यो मार्गो विद्यते। अतो नरैः ब्रह्मप्राप्तिकामैरेव भाव्यम्।

6. निष्कामकर्मैव साधनम्

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ – यजु–40–2

नरेण सदैव निष्कामकर्म समाचरतैवास्मिन् संसारे शतवर्षपर्यन्तं जीवितुमेषितव्यम्। ब्रह्मप्राप्तिकामेनापि तेन निष्कामकर्म कदापि न त्याज्यमिति वेदादेशः। फलासक्तिरहित-निष्कामकर्म प्रतिपादयन्ती श्रीमद्भगवद्गीताऽस्यैकस्यैव वेदमंत्रस्य सुविशदं भाष्यमस्तीत्यत्र नास्ति कोऽपि संशीतिलेशः अतो वेदकामधेनोरेव दोहनं यदि क्रियतेऽस्माभिस्तर्हि गीता सदृशा असंख्येया अमृतकुंभाः प्राप्तुं शक्या इति यदुक्तं स्व० डॉ. संपूर्णानन्दमहाभागै-स्तत्सर्वथाऽवितथमेव। इति शम्।

✦✦✦

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 10, No. 18 (117-125) January-June 2022 ISSN 2277-4351
UGC CARE listed (Arts & Humanities) RNI : UTTMUL 2012/53882

न्यायव्याकरणयोः शाब्दबोधविचारः

-राम किशोरः

ज्यूरिखविश्वविद्यालयः ज्यूरिख-8006,
स्विट्जरलैंड

उपोद्घातः (शोधपत्रसारांशः)

शाब्दबोधः एव कृत्स्नस्य जगद्व्यवहारस्य निदानभूतः अन्धकारनिवृत्तिश्च लोकस्य नानेन विना, उक्तञ्च दण्डिना "इदमन्धं तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्। यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते"। गौ अस्ति, गाम् आनय एवंभूतेषु वाक्येषु आकाङ्क्षादियुक्तैः शब्दैः अस्तित्वाद्यर्थयुक्तमर्थज्ञानं भवति। शाब्दबोधे उभयोरपि शब्दार्थयोः ज्ञानं भवति अथ च विलक्षणं ज्ञानमस्ति शाब्दबोधस्सर्वदैव। स च शाब्दबोधः आकाङ्क्षायुक्तैर्शब्दैरेव प्रतिपादयेत् साकाङ्क्षशब्दाश्च सार्थकास्स्युः न तु निरर्थकाः। साकाङ्क्षशब्दाश्शब्दान्तर-सापेक्षकाः अथ वा अन्येषां शब्दानां सहाचर्येण स्वार्थं प्रकटी करोति। अतः शाब्दबोधस्तु न प्रत्यक्षप्रमाणं नाप्यनुमानप्रमाणम् अपि तु शब्दप्रमाणत्वात् पृथगेव स्वरूपमाधत्ते। अत्र शाब्दबोधमधिकृत्य नैयायिकानां वैयाकरणानां च मतं विस्तरेण प्रतिपादितम्।

अवतरणिका

"प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वा-भासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः"[1] इति प्रथमसूत्रे एव भगवता अक्षपादेन इदमुद्घोषितं यत् एतेषां प्रमाणादिषोडशपदार्थानां तत्वज्ञानमेव मोक्षहेतुः (निःश्रेयसाधिगमम्प्रति हेतुरिति भावः)। इदञ्च यथार्थज्ञानं (प्रमा) चतुर्विधं **प्रत्यक्षानुमित्युपमितिशाब्दभेदात्** इति न्यैयायिकाः। इदानीं प्रत्यक्षादिचतुर्विधप्रमायाः उत्पत्तिक्रमः (करणं व्यापारश्च) रेखाचित्रमाध्यमेन अधः परिचीयते-

ज्ञानक्रमः-करणम् प्रमाणम्)+व्यापारः (करणम्+विषयः) → प्रमा (यथार्थज्ञानम्)

करणानि (साधनानि)- इन्द्रियम, व्याप्तिज्ञानम् सादृश्यज्ञानम्, पदज्ञानम्

1. न्यायसूत्रसंख्या-1/1/1।

प्रमाणानि	-	**प्रत्यक्षम्**	**अनुमानम्,**	**उपमानम्,**	**शब्दः**
		↓	↓	↓	↓
व्यापारः	-	**इन्द्रियार्थ-सन्निकर्षः,**	**परामर्शः,**	**अतिदेशवाक्यार्थ-स्मरणम्**	**पदार्थो-पस्थितिः**
		↓	↓	↓	↓
प्रमायाः प्रकारः	-	**प्रत्यक्षम्,**	**अनुमितिः,**	**उपमितिः,**	**शाब्दबोधः।**

शाब्दबोधस्य अभिप्रायः-

चतुर्षु प्रत्यक्षादिप्रमेष्वन्यतमः अन्तिमः प्रमेयः शाब्दबोधः, शब्दाज्जातः शाब्दः, शाब्दश्चासौ बोधः शाब्दबोधः इति शाब्दबोधः, अर्थात् शब्दनिष्ठशक्तिज्ञानजन्यः बोधः। पदविशेषोपस्थितेन पदार्थेन सह पदान्तरोपस्थितस्य पदार्थस्य यः संसर्गः, तस्य ज्ञानं शाब्दबोधः, अन्वयबोधः, वाक्यार्थबोधो वा। आकाङ्क्षादिविशिष्टशब्दनिष्ठशक्तिज्ञानजन्यबोधः शाब्दबोधः इति हि निष्कृष्टार्थः।

शाब्दबोधे कारणतासामग्री-

अस्मिन् शाब्दबोधे पदज्ञानम्, पदजन्यपदार्थस्मरणम्, पदपदार्थयोः संसर्गात्मकं वृत्तिज्ञानम्, आसत्तिः-योग्यता-आकाक्षां-तत्पर्यमित्येतानि सहकारिकारणानि। तेषां मध्ये पदज्ञानं शाब्दबोधे करणम्। करणं च व्यापारवत्। व्यापार[1]श्चास्मिन् शाब्दबोधे पदज्ञानजन्यपदार्थोपस्थितिः, सा च पदार्थोपस्थितिः वृत्तिज्ञानाधीना, वृत्तिश्च शक्ति-लक्षणान्यतरसम्बन्धरुपा। उक्तञ्च-

पदज्ञानं तु करणं, द्वारं तत्र पदार्थधीः।
शाब्दबोधः फलं तत्र शक्तिधीः सहकारिणी।।[2]

अर्थात्

करणम् (साधनम्)	**पदज्ञानम्**
	↓
व्यापारः	**शक्तिज्ञानपदार्थोपस्थितिः**
	↓
फलम्	**शाब्दबोधः**

श्लोकस्य अयं भावः- पदज्ञानं तु करणं, द्वारं तत्र पदार्थधीः।

---

1. पदजन्यपदार्थस्मरणं व्यापारः।
2. न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, शब्दखण्डम्

शाब्दबोधः फलं तत्र शक्तिधीः सहकारिणी इत्युक्त्वा शाब्दबोधप्रक्रियां दर्शयन्ति तार्किकाः। अर्थस्त्वेत्थम् तत्र = शाब्दबोधे, पदज्ञानम्=पदविषयकं ज्ञानं, (न तु ज्ञायमानं पदम्)[1] तु = एव, करणम्=साधतकमम्, असाधारणं कारणं वा भवति। पदार्थधीः= पदज्ञानजन्यं तत् पदार्थस्य ज्ञानं तत्पदार्थविषयकं स्मरणम्, द्वारम्= व्यापारः अस्ति। यदि अत्र पदार्थविषयकस्मरणं नोच्येतार्थः तदा पदज्ञानवतः पुरुषस्य प्रत्यक्षदिना पदार्थस्य उपस्थितौ अपि शाब्दबोधो जायेत इत्यापत्तिर्भवेत्। शब्दबोधः+वाक्यार्थबोधः शब्दसमूहात्मकवाक्यजन्यः योऽस्ति सः, फलम् = प्रमा यथार्थानुभवोऽस्ति।

तत्र=पदजन्ये पदार्थस्मरणरूपे व्यापारे, शक्तिधीः=पदेन सह पदार्थस्य सम्बन्धरूपा या सङ्केताख्या शक्तिः[2] तस्याः, धीः=ज्ञानम्, सहकारिणी = सहकारिकारणं जायते। अत्र पदे शक्तिपदं वृत्तिबोधकम्। वृत्तिश्च शक्तिलक्षणान्यतररूपा।

अस्मात् पदात् अयमर्थो बोद्धव्यः अथवा "इदं पदममुमर्थं बोधयतु" इति पदप्रकारार्थविशेष्यकेच्छारूपशक्तिज्ञानरूपा, अर्थप्रकारकपदविशेष्यकेच्छारूपशक्तिज्ञानरूपा च सहकारिकाराणां भवतीत्यर्थः सम्पद्यते।

तत्र अस्मात् पदादयमर्थः बोद्धव्यः, इदं पदमिमर्थम् बोधयतु वेति ईश्वरस्य अस्मदीयानां वेच्छा शक्तिः, शक्तिग्रहश्च व्याकरणादिभ्यो ज्ञायते-

शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च।
वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः॥[3]

धातुप्रकृतिप्रत्ययादीनां शक्तिग्रहो व्याकरणाद्भवति। क्वचित्सति बाधके त्यज्यते। यथा वैयाकरणैराख्यातस्य कर्तरि शक्तिरूच्यते। चैत्रः पचतीत्यादौ कर्त्रा सह चैत्रस्य अभेदान्वयः। तच्च नैयायिकैः गौरवात्त्यज्यते। कृतश्चैत्रादौ प्रकारीभूय भासते। व्यापारेऽपि न शक्तिः गौरवात्। रथे गच्छतीत्यादौ तु व्यापारे आश्रयत्वे वा लक्षणा।

एवञ्च पदज्ञानं शक्तिरूपया लक्षणरूपया वा वृत्त्या पदार्थमुपस्थापयति। ततः शाब्दबोधः भवति। अस्मिन् शाब्दबोधे **आसत्तिज्ञानं-योग्यताज्ञानं-आकाङ्क्षाज्ञानं-तात्पर्यज्ञानं** च कारणमिति प्राचीनाः वदन्ति। यत्पदार्थस्य यत्पदार्थेन अन्वयः अपेक्षितः

---

1. न तु ज्ञायमानं, पदभावेऽपि मौनिश्लोकादौ शाब्दबोधात्।
2. वृत्तिश्च शक्तिलक्षणान्यतरसम्बन्धः। शक्तिश्च पदेन सह पदार्थस्य सम्बन्धः। सा च अस्मात् पदात् अयमर्थः बोद्धव्यः इतीश्वेराच्छा। आधनुके नाम्नि शक्तिरस्त्येव "एकादशेऽहनि पिता नाम कुर्यात्" इतीश्वेरेच्छायाः सत्त्वात्।आधुनिकेसङ्केतिते तु न शक्तिः इति सम्प्रदायः कित्विच्छैव, तेनाधुनिकसङ्केतितेऽपि शक्तिरस्त्येवेत्याहुःपदज्ञानस्य हि एकसम्बन्धिज्ञानविधया पदार्थोपस्थापकत्वम्। (न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, शब्दखण्डः)
3. न्यायसिद्धान्तमुक्तावली,शब्दखण्डः

तयोः अव्यवधानेन उपस्थितिरासत्तिः, एकपदार्थेन अपरपदार्थसम्बन्धः, येन पदेन विना यत्पदार्थस्य अन्वयानुपपत्तिः, तेन पदेन सह तस्य पदस्य आकाङ्क्षा, वक्तुरिच्छा तात्पर्यम्।

नव्यानां मते तु शाब्दबोधे एतेषामसत्त्यादीनां कारणत्वं नास्ति। तेषां मते पदज्ञानं पदजन्यपदार्थस्मरणं चेत्येतद्वयमेव शाब्दबोधे क्लृप्तं कारणम्। अस्मिन् वाक्यार्थबोधे पदैरुपस्थितानां पदार्थानाम् परस्परसम्बन्धपदैरेव ज्ञायते, अन्यथा इत्यत्र महती विप्रतिपत्तिरस्ति विदग्धानाम्।

आकाङ्क्षादीनां विवरणं संक्षेपतः अधः उपस्थाप्यते-

आकाङ्क्षा- न्यायसिद्धान्ते तावत् आकाङ्क्षाविषये विलसन्ति बहव्यः विप्रतिपत्तयः- तत्र उदयनाचार्यः आकाङ्क्षा तावत् जिज्ञासां प्रति योग्यता। मणिकारस्तु यस्य पदस्य यदभावप्रयुक्तस्वार्थान्वयाननुभावकत्वं तस्य पदस्य तदनुभावकत्वमेव आकाङ्क्षा। न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीकारैः विश्वनाथाचार्यैरुच्यते- "यत्पदेन विना यस्याननुभावकता भवेत्[1] आकाङ्क्षा" अर्थात् समभिव्याहृतपदनिष्ठशाब्दबोधजनकत्वाभावः यत् पदाभावप्रयुक्तः स समभिव्याहृतपदनिष्ठतत्पदनिरूपिता आकाङ्क्षा। अन्नभट्टस्तु - पदस्य पदान्तरव्यतिरेकप्रयुक्तान्वयाननुभावाकत्त्वमाकाङ्क्षा[2]। अस्याः आकाङ्क्षायाः ज्ञानं शाब्दबोधे हेतुः।

योग्यता- एकपदार्थे अपरपदार्थसम्बन्धः योग्यता। पदार्थे तत्र तद्वत्ता योग्यता परीकिर्तिता[3]। जलेन सिञ्चति वृक्षमित्यादौ जले सेचनकारणतायाः सम्बन्धात् शाब्दबोधः। "वह्निना सिञ्चति" इत्यत्र तु सेचनं वह्निकरणत्वं च इत्यनयोः सम्बन्धो नास्तीति योग्यताभावात्, न शाब्दबोधः। अन्नम्भट्टपादेन- "अर्थाबाधः योग्यता"[4] इति।

आसत्तिः- आसत्तिर्नाम पदयोः सन्निधिः, अविलम्बेनोपस्थितिर्वा, "सन्निधानं तु पदस्यासत्तिरुच्यते[5]। पदानामविलम्बेनोच्चारणं सन्निधिः[6] इति अन्नम्भट्टपादाः। ययोः पदयोः परस्परम्मन्वयबोधः इष्यते तयोः पदयोः कालेन पदान्तरेण वा अव्यवधानं शाब्दबोधे कारणम्। यथा अश्वो चलति इत्यत्र अश्वपदेन चलतिपदस्य आसत्तिः अस्ति तज्ज्ञानत् शाब्दबोधः भवति।

---

1. न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, शब्दखण्डः
2. तर्कसंग्रहः, शब्दपरिछेदः
3. न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, शब्दखण्डः
4. तर्कसंग्रहः, शब्दपरिछेदः
5. न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, शब्दखण्डः
6. तर्कसंग्रहः, शब्दपरिछेदः

तात्पर्यम्- **"वक्तुरिच्छा तु तात्पर्यं परिकीर्तितम्"**[1] इति मुक्तावलीकारः। अत्र वक्तृपदमभिसन्धाताबोधकम् न तु उच्चारयिता, तस्मात् मौनिश्लोकादौ न अतिव्याप्तिः। अभिसन्धात्रा यद् वाक्यार्थत्वेनाभिप्रेतं तदेव तात्पर्यम् इति पर्य्यवसितम्, तज्ज्ञानं शाब्दबोधे कारणम्। यदि तात्पर्यज्ञानं कारणं न स्यात् तदा सैन्धवमानय इत्यादिना युद्धयात्राप्रकरणे अश्वस्य भोजनप्रकरणे च लवणस्य बोध इति नियमो न स्यात्।

शाब्दिकानां मतमिहोपस्थाप्यते

फलव्यापारयोर्धातुराश्रये तु तिङः स्मृताः।
फले प्रधानं व्यापारस्तिङर्थस्तु विशेषणम्।।[2]

फलव्यापारौ धात्वर्थौ। तिबादिप्रत्यया: आख्यातसञ्ज्ञका: अत: आख्यात: तिङर्थ: कर्ता/कर्म (आश्रय:)। धातुविहितप्रत्यय:। कर्ताकर्मक्रियादिद्वारा निष्पन्न: **शाब्दबोध: व्यापारमुख्यविशेष्यक:**[3] भवति। अत्र विशेषेण इदं ध्यातव्यं यत् वैयाकरणा: फलविशिष्टव्यापार एव धात्वर्थ: अर्थात् फलविशिष्टव्यापाररूपार्थे धातोरखण्डशक्तिं मन्वन्ते। तेषां नये कर्तृप्रत्ययसमभिव्याहारे (कर्तृवाच्ये) कर्मप्रत्ययसमभिव्याहारे (कर्मवाच्ये) उभयत्र एकैव **व्यापारमुख्यविशेष्यकशाब्दबोध:**, फलविशिष्टव्यापारस्य धात्वर्थत्वात्। नव्यास्तु (नागेशादय:) **"सुप आत्मन: क्यच्"**[4] सूत्रस्य भाष्यमाधृत्य धातो: पृथक् पृथक् (खण्डश:) शक्तिं स्वीकृत्य फलमपि स्वतन्त्रतया धात्वर्थ:, व्यापारोऽपि स्वतन्त्रतया धात्वर्थ: इति मत्वा तस्मात् कर्तृवाच्ये कर्मवाच्ये पृथक् पृथक् शाब्दबोध: इत्यङ्गीकुर्वन्ति। इदानीन्तावत् प्रथमं कर्तृप्रत्ययस्थले शाब्दबोध: विचार्यते। "सुप आत्मन: क्यच्" इति सूत्रस्थभाष्यमवलम्ब्य कर्तृप्रत्ययस्थले **व्यापारार्थमुख्यविशेष्यक-शाब्दबोधं**, कर्मवच्ये **फलमुख्यविशेष्यकशब्दबोधं** स्वीकुर्वन्ति नव्या:। तस्मात् "देवदत्त: ओदनं पचति" **"देवदत्ताभिन्नैककर्तृक: ओदनकर्मक: वर्तमानकालिक: विक्लित्यनुकूलव्यापार:"** इत्ययं शाब्दबोध: भवति नव्यानुसारेण।

कर्मवाच्ये फलस्य प्राधान्यात्, "देवदत्तेन ओदन: पच्यते" इत्यस्य **देवदत्तवृत्ति-वर्तमानकालिकव्यापारजन्याविक्लित्तिरिति** शाब्दबोधमङ्गीकुर्वन्ति नव्यशाब्दिका:। प्राचीनास्तु उभयत्र व्यापारमुख्यविशेष्यक एव शाब्दबोधमङ्गीकुर्वन्ति। तिङर्थ:-कर्तृकर्म-सङ्ख्याकाला:। तत्र कर्तृकर्मणी फलव्यापरयोर्विशेषणे। साङ्ख्या कर्तृप्रत्यये कर्तरि कर्मप्रत्यये कर्मणि, समानप्रत्ययोपात्तत्वात्। कालस्तु व्यापारे विशेषणम्।

---

1. न्यायसिद्धान्तमुक्तावली,शब्दखण्ड:
2. वैयाकरणभूषणसार:,धात्वर्थनिर्णय:
3. वैयाकरणभूषणसार:,धात्वर्थनिर्णय:
4. अष्टाध्यायी 3.1.8

व्यापारत्वम् नाम- फलप्रयोजकक्रियात्वं व्यापारत्वम्। तज्जन्यत्वे सति तज्जन्य-जनकत्वं व्यापारत्वम्। पदान्तरसमभिव्याहारप्रयोज्य-साध्यत्वप्रकारक-प्रतीतिविषयत्वं व्यापारत्वम्। अत एव उक्तम्-

असत्त्वभूतभावस्तु तिङ्पदेनाभिधीयते।
सत्त्वस्वभावमापन्ना व्यक्तिर्नामभिरूच्यते॥[1]

अत्र सर्वत्र फलत्वम् नाम अन्येच्छानधीनेच्छाविषयत्वमिति यावत्। तदुक्तं हरिणा-

यस्यार्थस्य प्रसिद्ध्यार्थमारभ्यन्ते पचादयः।
तत्प्रधानं फलं तेषां न लाभादिप्रयोजनम्॥[2]

कर्तृप्रत्ययसमभिव्याहारे तद्धातुजन्यशाब्दबोधीयधात्वर्थनिष्ठविशेष्यतानिरूपित-प्रकरताश्रयत्वे सति तद्धातुवाच्यत्वं फलत्वम्। धातुनिष्ठवृत्तिविशिष्टत्वम्-वैशिष्ट्यञ्च-स्वज्ञानजन्योपस्थितिविषयत्वम्, स्वज्ञानजन्योपस्थितिविषयव्यापारविशिष्टत्वम्, इत्युभय-सम्बन्धेन, व्यापारविशिष्टत्वञ्च स्वजन्यत्वप्रकारकप्रतीतिविषयत्वम्, स्वप्रयोज्यत्वप्रकारक-प्रतीतिविषयत्व, एतदन्यतरसम्बन्धेन। यद्यपि व्यापारः क्रियापर्यायवाचकः तथापि उभयोरस्ति कश्चन मौलिकः भेदः। स त्वयमेव यत् क्रियाशब्दः नानव्यापारसमूहवाचकः। तस्मात् एका क्रिया नानावान्तरव्यापारवाचिकाः। अतः पाकक्रियायां युक्तो जनः जलानयनकाले फूत्करादिसमयेऽपि सर्वत्र पाकमेव करोमि वदति। क्रिया एका एव तथापि अयं बुद्धिकल्पित एव भेदः। उक्तञ्च-

गुणैभूतैरवयवैः समूहः क्रमजन्मनाम्।
बुद्ध्या प्रकल्पिताऽभेदः क्रियेति व्यपदिश्यते॥ इति॥[3]

शाब्दिकानां शाब्दबोधबिषयकप्रत्ययानामिह विस्तरेण विवेचनमुपस्थाप्यते-

व्यापारमुख्यविशेष्यकशाब्दबोधः-

वैयाकरणास्तावद् एवं मन्यन्ते-कारकाणां क्रियायामन्वय इत्यनुभवात् क्रियापदे प्रायः सुबन्तानामन्वयः इति ज्ञायते। "नीलोत्पलमानयती"त्यत्र समासार्थस्य नीलत्व-विशिष्टोत्पलस्य द्वितीयार्थे कर्मणि। तस्य धात्वर्थे आनयनेऽन्वय इति नीलत्वविशिष्टोत्पल-कर्मकमानयनमिति शाब्दबोधः भवति।

तथैव "नीलमुत्पलमानये" इति व्यासस्थले नीलकर्मकमानयनम्, उत्पलकर्म-कमानयनम्, इति पृथक् पृथक् बोधस्य अनुभवाद् द्विः कर्मत्वभानम् विहाय समानाधिकरणयोः नीलोत्पलपदयोः नीलत्वविशिष्टोत्पलरूपैकार्थपरत्वम् अङ्गीकृत्य तस्य

1. वाक्यपदीयम्-2/115
2. वैयाकरणभूषणसारः(दर्पणटीका),धात्वर्थनिर्णयः
3. वैयाकरणभूषणसारः,धात्वर्थनिर्णयः

धात्वर्थे आनयने द्वितीयार्थकर्मत्वद्वारा अन्वयस्वीकारात् नीलत्वविशिष्टोत्पलकर्मक-मानयनमित्येव शाब्दबोधः। एवं च सविशेषणानां विशेषरहितानां वा कर्त्रातिरिक्तानां सर्वेषां कारकाणां धात्वर्थक्रियान्वयस्य नैयायिकादिभिरपि स्वीकृतत्वात् प्रथमान्तार्थस्य कर्तृकारकस्यापि तत्रैवान्वयः उचितः समानन्यायात् तथा च "देवदत्तः नीलोत्पलमानयती"त्यत्र द्वितीयार्थः कर्म। तत्र प्रकृत्यर्थस्य अभेदसम्बन्धेन अन्वयः। कर्मणः धात्वर्थेऽन्वयः। तिङः कर्ता अर्थः। तत्र अभेदसम्बन्धेन प्रथमान्तार्थस्य देवदस्य अन्वयः। कर्तुरपि धात्वर्थे आनयनेऽन्वयः। तथा च नीलत्वविशिष्टोत्पलाभिन्नकर्मकं देवदत्ताऽभिन्नकर्तृकं चानयनमिति धात्वर्थमुख्यविशेष्यान्वयबोधो भवति। अत्र विषये प्रमानमुपपत्तिः प्रतिपादयति -निरुक्तकारः "चत्वारि पदजातानि नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च"[1] इत्युपक्रम्य "सत्त्वप्रधानानि नामानि"[2] इति नामलक्षणम् "भावप्रधानमाख्यातम्"[3] इति आख्यातलक्षणम् च निरूपयति।

प्रकरणमिदं प्रकारान्तरेण एवमप्युपस्थापयितुं शक्यते-

इति कारिकोक्तप्रकारेण जायते। तत्र व्याकरणस्योपयोगः नितरां साधकः। यतोहि धातुप्रकृत्यादीनां शक्तिग्रहो व्याकरणाज्जायते। सति बाधके क्वचित् व्याकरणात् गृहीता शक्तिः त्यज्यते। यथा- वैयाकरणाः **आख्यातस्य=तिङः, कर्तरि शक्तिं स्वीकुर्वन्ति।** तन्न नैयायिकैरङ्गीक्रियते। यतो हि तेषां मतेन "चैत्रः पचति" इत्यादौ कर्त्रा सह चैत्रस्य अभेदेनान्वयो भवति। तत्र गौरवं भवति। अयमाशयो वर्तते यत्-

"लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः"[4] इति सूत्रे कर्तरि कृत् इत्यतः कर्तरि इति अनुवर्तते। तेन सकर्मकेभ्यो धातुभ्यः लकाराः कर्तृवाचकाः कर्मवाचकाश्च भवन्ति। अकर्मकेभ्यो धातुभ्यश्च लकाराःकर्तृवाचकाः भाववाचकाश्च भवन्ति। भाववाचकत्वं नाम निरर्थकत्वमेव अर्थात् तिङादिप्रत्ययानां कर्तृकर्मभाववाचकत्वम्। एवं तत्र तत्र कर्त्रादौ तिङादीनां शक्तिग्रहः।

विभक्तीनां सुबन्तानाञ्च- द्वितीयातृतीयासप्तमीनाम् आश्रयः अर्थः। एवमेतासां विभक्तीनाम् आश्रयेऽर्थे शक्तिग्रहः। **"क्रियाजन्यफलाश्रयः कर्म"** इत्यत्र द्वितीयायाः शक्तिग्रहः। धात्वर्थः व्यापारः फलञ्चेति। "क्रियाजन्यफलाश्रयः कर्म"। **धात्वर्थव्यापाराश्रयाः कर्ता** इति कर्तुः, कर्तरि तृतीयायाःसप्तम्याश्च आश्रयोऽर्थः इति।

सप्तम्याः आश्रयः आधारोऽधिकरणमित्यनेन अधिकरणम्, तत्राश्रये शक्तिग्रहः, पञ्चम्याः अवधौ अर्थे शक्तिग्रहः, चतुर्थ्याःउद्देश्ये सम्प्रदाने शक्तिग्रहः, षष्ठ्याश्च

---

1. निरुक्त, प्रथमोऽध्यायः
2. निरुक्त, प्रथमोऽध्यायः
3. निरुक्त, प्रथमोऽध्यायः
4. अष्टाध्यायी 3.4.69

सम्बन्धेऽर्थे शक्तिग्रहः इति विभक्तीनां शक्तिरेवार्थोऽस्ति। स्वादिप्रत्ययानाम् एकत्वद्वित्वबहुत्वेषु शक्तिः। समासादिवृत्तीनां च प्रातिपदिकत्वेन तत्रापि शक्तिग्रहः। इत्थम्, वैयाकरणनये चैत्रस्तण्डुलं पचति चैत्रेण तण्डुलः पच्यते, मैत्रः तिष्ठति, मैत्रेण स्थीयते इत्यादिषु उदाहरणेषु क्रमशः तिपः शप्प्रत्ययसमभिव्याहारे कर्ता इत्यर्थः। पच्यते इत्यत्र तिङः यक्समभिव्याहारे कर्ता इत्यर्थः। तिष्ठति इत्यत्र तिङः कर्ता इत्यर्थः। स्थीयते इत्यत्र तिङः भावर्थकत्वात् निरर्थकत्वं धातोरेवार्थस्य कथनात् सिद्ध्यति। आख्यातार्थयोः कर्तृकर्मणोः प्रथमान्तार्थेन सह अन्वयं विधाय धात्वर्थव्यापारमुख्यविशेष्यकशाब्दबोधं वैयाकरणाः कथयन्ति। तिङ्पदार्थश्च कर्ता कर्म संख्या कालश्च। धात्वर्थः फलं व्यापारश्च। तिङ्प्रत्यार्थस्य कर्तुः(कर्तरिप्रत्यये) संख्यायाश्च चैत्रेण सह अभेदान्वयः, कालश्च व्यापारे विशेषणत्वेनान्वेति।कर्माख्याते तिङर्थस्य कर्मणः संख्यायाश्च तण्डुलेन अन्वयः। इत्यथम्-

चैत्रः तण्डुलं पचतीत्यस्य **चैत्राभिन्नककर्तृकः तण्डुलभिन्नकर्मकः वर्तमान-कालिकः विक्लित्यनुकूलव्यापारः** इति शाब्दबोधः।

चैत्रेण तण्डुलः पच्यते इत्यस्य **चैत्राभिन्नैककर्तृनिष्ठव्यापारजन्या तण्डुला-भिन्नैकत्वावच्छिन्नाश्रयनिष्ठावर्तमान्कालिका विक्लित्तिः** इति शाब्दबोधे भवति।

चैत्रस्तिष्ठति -चैत्रेण स्थीयते इत्यनयोः **"चैत्राभिन्नैककर्तृका स्थितिः"** इत्येव शाब्दबोधः।

निगमनम्- वैयाकरणानां नैयायिकानाञ्च शाब्दबोधप्रक्रिया परस्परं सायुज्यैव पूर्यते। मुक्तावलीकारानुसारेण शाब्दबोधफलप्राप्तये साधनव्यापारफलञ्चेति आवश्यकम्। तत्र साधनव्याभ्यामन्तरेण नैव प्राप्तुमहर्ति फलम्। साधनं तु पदज्ञानं व्यापारञ्च पदार्थज्ञानं स्मरणं वा। प्रथमस्तावत् पदज्ञानं विना व्याकरणेन न सिध्यति। व्याकरणेऽपि पदम् "समर्थः पदविधिः" परिभाषाबलेनैव सिध्यति। तत्र समर्थानां पदानामेव विधिर्भवति। समर्थेन सङ्गतार्थता, संबद्धार्थता, संश्लिष्टार्थता परिलक्ष्यते। अथ च समर्थबलेनैव तिङ्गत्व सुपत्वञ्चापि सिध्यति। तत्रापि वाक्यार्थबोधे तिङ्गर्थस्तुविशेषतयोक्तम्। वैयाकरणस्तु सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे इति राद्धान्तेन बलेन शब्दार्थस्तु नित्यं स्वीकुर्वन्ति। पुनरपि वाक्यार्थबोधे सम्पूर्ण वाक्ये एव पदानि सार्थकतां लभते।

तत्र व्याकरणस्योपयोगः नितरां साधकः। यतोहि धातुप्रकृत्यादीनां शक्तिग्रहो व्याकरणाज्जायते। सति बाधके क्वचित् व्याकरणात् गृहीता शक्तिः त्यज्यते। यथा - वैयाकरणाः आख्यातस्य=तिङः, कर्तरि शक्तिं स्वीकुर्वन्ति तन्न नैयायिकैरङ्गीक्रियते।

आकरग्रन्थाः -

1. भर्तृहरि, (सं.-रघुनाथ शर्मा) वाक्यपदीयम्, 1980, वाराणसी, संपूर्णानन्दसंस्कृत-विश्वविद्यालयः।
2. पतञ्जलि, (सं. भार्गव शास्त्री जोशी),व्याकरण-महाभाष्यम्, 1991, दिल्ली, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान।
3. पाणिनि, अष्टाध्यायी, 2003, दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन।
4. गौतम, न्यायदर्शनम्, 1985, दिल्ली, मुंशीराम मनोहरदास पब्लिशर्स।
5. विश्वनाथपञ्चाननभट्टाचार्य (सं. श्रीशङ्कररामशास्त्री), न्यायसिद्धान्तमुक्तावली (प्रभामञ्जूषासहिता), 1988, दिल्ली, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान।
6. विश्वनाथपञ्चाननभट्टाचार्य (सं. श्रीआत्मराम शर्मा), न्यायसिद्धान्तमुक्तावली (दिनकरीरामरुद्रीसहिता), 2012, दिल्ली, राष्टीय संस्कृत संस्थान।
7. कौण्डभट्ट, वैयाकरणभूषणसारः, 2012, वाराणसी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन।
8. अन्नम्भट्ट, तर्कसंग्रहः, 2015, वाराणसी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन।
9. यास्क, निरुक्त, 2003, अजमेर, परोपकारिणी सभा।

✦✦✦